

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180428

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/553Ap Accession No. G.H. 2194

Author शा. 2 प्रो. चक्रवर्त

Title अपराजिता / 1952

This book should be returned on or before the date
last marked below.

अपराजिता

(सामाजिक, क्रान्तिकारी रोचक उपन्यास)

लेखक

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड सन्स

काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

Checked 1969

मूल्य दो रुपये

मुद्रक

श्यामकुमार गर्ग

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

ववीन्स रोड, दिल्ली ६

उत्पत्त/जल-कण

जब से प्रोक्टस छोड़ी और क्लम-घिसाई का धन्वा अस्तित्वार किया, तंगदस्ती बढ़ती ही गई। अजब नहीं, एक दिन भूखों मरने की नौबत आ जाय। परन्तु मुझ 'इच्छा-दरिद्री' को इसकी शिकायत क्या ?

महीनों से बच्चे फटे हाल स्कूल जा रहे थे, उस दिन बाज़ार में कपड़े का एक पीस सस्ता मिल गया। इत्तफ़ाक़ से पैसे जेब में थे—खरीद लाया। घर आकर प्रभा से कहा—“इस कपड़े का तू फ़ाँक बनवायगी या प्रकाश का बुश-शर्ट बनवा दूँ।” उसने कोमलता से हँसकर कहा—“प्रकाश का बुश-शर्ट बनवा दीजिए” और चली गई। फिर मैंने प्रकाश को बुलाकर पूछा—“इस कपड़े का तू बुश-शर्ट बनवायगा या मैं प्रभा का फ़ाँक बनवा दूँ।” उसने झटककर कपड़ा मेरे हाथ से खींच लिया और उसे लेकर हँसता और यह कहता हुआ भाग गया—“मैं बुश-शर्ट बनवाऊँगा।”

साहित्यकार ख़ुशी तो होते ही हैं। बहुत देर तक मैं इस अत्यन्त छोटी सी बात पर विचार करता रहा। विचार करते-करते बहुत पुरानी—साठ वर्ष पहली धुँधली स्मृतियाँ मानस-पटल पर उदित हो आईं। पिताजी कभी नाराज़ होकर मुझे एकाध चपत मार देते थे या गुस्सा होकर बकते थे तो कला की आँखों में पानी भर आता था। कला मुझसे बहुत छोटी थी—नासमझ थी—फिर भी जो चपत मुझ पर पड़ती थी, उसकी चोट न जाने कहाँ—कैसे उसे लग जाती थी, क्यों उसकी आँखें भर आती थीं। तब मैंने यह मर्म नहीं समझा था, इस पर विचार भी नहीं किया था। परन्तु इसके बाद ही नारी जाति से मेरा परिचय बढ़ता ही गया। बचपन में मैंने अपनी माता की निरीह असहाय अवस्था देखी, अपने परिजन, पास-पड़ोस की स्त्रियों की दुरवस्था को देखा, कोई पति से पिटती थी और रोती हुई माता के पास आकर फरियाद करती थी, कोई आभी

रात से सूर्योदय तक चक्की पीसकर अपना और बच्चों का पेट पालती थी। कोई बालिका विधवा थी, कोई युवती पति से त्यागी जाकर पिता के घर-भर के तिरस्कार सह रही थी। एक बार अपने पड़ोस की एक सात वर्ष की बालिका को, जब मैंने इसलिए फूट-फूटकर रोते देखा कि उसकी माता ने उसकी एक ही दिन पहले पहनी चूड़ेया को पत्थर से चकनाचूर कर दिया। क्योंकि उसके विधवा होने का तार सुसराल से आया था। वह सिसक-सिसककर रो रही थी विधवा होने के कारण नहीं—चार पैसे की चूड़ियों के कारण !!!

मेरी आँखें खुलती गईं, और नारी की भावुकता और पीड़ा मेरे अंग में प्रवेश करती गईं। तब से अब तक, बहुत बार मुझे उनके लिए आँखों का पानी बहाना पड़ा। और एक दिन एक असहाय नव-प्रसूता को एक तनिक से अपराध में जब उसके पति ने निर्दय होकर खूब पीटा, उसके सब जेवर उतार लिए, उसे जाड़ो की सूनी-काली और ठण्डी रात में धक्का देकर घर से निकाल घर में ताला बन्द कर दिया। बेचारी असहाय नारी अस्मत्, गैरत, लाज और मर्यादा से लदी-फड़ी किसी पाम-पड़ोमिन के यहाँ शरण न जा सही—अफीम निगल गई। भोर के तड़के मैं उभर होकर शौच के लिए निकला—अधरें में ठोकर लगी। अरे, यह राह में कौन सो रहा है? देखा तो . . . की बहू! आँखें पथराईं, मुँह से फेन निकलता हुआ बदन ठण्डा बर्फ लकड़ी-सा ऐंटा हुआ, छाती पर सूखे स्तन चूसती हुई नवजात बालिका! हे राम, हे राम, मैं दौड़ा-दौड़ा माता के पास गया। माँ ने उठाकर उसे बिछौने पर सुलाया—उपचार किया। माँ को उसने धन्यवाद नहीं दिया, आँखों में पानी भरकर कहा—“अम्मा, अच्छा नहीं किया, मुझे दुःख-सागर में फिर धकेल लाईं, मैं जा रही थी सुख-सागर में गोते लगाने।” और माँ ने अपनी चिर अभ्यस्त गाली दी—“पगली, ले दूध पी!” और गर्म दूध का गिलास उसके सूखे-शीतल होठों से लगा दिया। तीन दिन मैं उस नारी की खाट के पास पाटी पर सिर टेके बैठा रहा। सेवा-टहल कुछ नहीं की, सिर्फ कमी कमी पूछता—“अब कैसी हो भाभी, क्या अम्मा को बुलाऊँ?” और उसका जवाब था—“नहीं भैया, मैं अच्छी हूँ।” इसके बाद पानी-पानी-पानी। वही आँखों का पानी।

इससे तो मेरी आँखों का पानी भुलस उठा ! वह उत्तम होकर चार-चार धार बहने लगा । कितना बहा—अब इसका हिसाब-किताब क्या दूँ ? एक-दो दिन का खाता नहीं है, साठ साल से कुछ ऊपर ही का जमा-स्वर्च है ।

इस बीच—ज्ञान, विज्ञान, धर्म, नीति, समाज—राजनीति और अर्थशास्त्र के गहन वनों में होकर जीवन पार करना पड़ा, संपत्ति और विपत्तियों ने प्राणों को बहुत बार झकझोरा, बहुत बार जीवन-मरण की समस्याएँ आईं, अनगिनत शत्रु और मित्रों से हाथ मिले, आँखें मिलीं, परन्तु वह 'नारी' जो हृदय में बैठी-सो-बैठी, आँखों से भरी हुई, दर्द से कराहती हुई, निराशा से लाचार, असहाय बेवस ।

चार युग देखते-ही-देखते बीत गए । युग ने पलटा खाया, नारी की दर्द-भरी कराह-क्रोध की चीत्कार और आवेश के फूटकार में बदल गई । मेरी माँ, दादी, चाची, भाभियो और बहनो की लूँटा कभी घर की दहलीज के बाहर नहीं हुई । लक्ष्मण की खाँची हुई रेखा को जैसे रावण को पिन्ना देने आकर सीता के उल्लंघन करने में आपत्ति थी, वैसे ही अपने लूँटा भरे दुःख-मुख को लेकर घर की दहलीज से बाहर निकलना उनकी मर्यादा से बाहर था । घर ही में वे जन्मी, बड़ी, जीई, और मरी । परन्तु आज की मेरी बेटियाँ ने उस लक्ष्मण की रेखा को—घर की दहलीज का उल्लंघन कर दिया, उन्होंने कालेज से उच्च शिक्षाएँ प्राप्त की है वे जीवन के संघर्ष में पुरुषों की प्रतिस्पर्धा करने लगी है । साहस और प्रतिभा का जहाँ तक सवाल है, वे पुरुषों से आगे हैं, पाश्चात्यो के संग ने हमारी नारी-समस्या को भारी उलझन में डाल दिया है और आज केवल हमारा ही नहीं सारे ही ससार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रश्न—यह उठ खड़ा हुआ है कि “नारी का समाज में क्या स्थान होगा ।” सभ्य संसार के सामने बड़े-बड़े विकट राजनैतिक और आर्थिक प्रश्न हैं, परन्तु मेरा खयाल है कि दुनिया के मेधावी उन प्रश्नों का हल निकाल लेंगे, परन्तु इस नारी-समस्या का नहीं ।

सभ्य-शिष्ट-समुन्नत नारी-समाज ने घर की दहलीज का उल्लंघन अवश्य किया है, पर ऐसा करके उसने रावण के द्वारा हरण किये जाने की खतरा

उठाया है। 'पुरुष' यह छद्मवेशी राक्षस—साधु के वेश में भिक्षा के मिस उसे हरण करने की ताक में है। नारी को—उसके साहस ने, शिद्दा ने, समुन्नत होने ने तनिक भी तो सहारा नहीं नहीं दिया है। बंधुवर मैथिलीशरण गुप्त ने तो एक ही वाक्य में नारी का सब-कुछ बखान कर दिया—“आँचल में है दूध, और आँखों में पानी।” अब वह नारी—धन दौलत, शिद्दा, और सारी विभूतियों से लदी-फदी रहे उसका सच्चा परिचय तो यही है—“आँचल में है दूध और आँखों में पानी।”

मैं तो पहले ही कह चुका हूँ—इस पानी में मैंने भी अपनी आँख का बहुत पानी मिलाया है, अलबत्ता, इसका कोई साक्षी नहीं है परन्तु यह दूध का ऋण नहीं है यह तो मेरे 'जीवन' का ऋण है। मैं तो यही समझता हूँ और सब क्या समझते हैं—मैं नहीं जानता।

मैं चिकित्सक भी तो हूँ। और अपने पचास वर्षों के अनुभव ने मैंने एक चिकित्सा-तत्त्व पाया है, 'विषस्य विषमौषधम्।' यह बड़ा भारी गूढ़ तत्त्व है। इसी तत्त्व पर मैंने 'नारी-समस्या' को भी परखा है। और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि नारी-ही-नारी की समस्या को हल कर सकती है, परन्तु 'नारी' रहकर। 'नर बनकर नहीं।' 'नारी' बनने के लिए उसे 'नारी-तत्त्व' को जीवन में आत्मसात् करना होगा। ऐसा करने ही से वह 'अपराजिता' के रूप में उदय होगी।

नीम बरस से मैं 'इस' 'अपराजिता' नारी की खोज में था—कहीं मिलती ही थी। २५ मई १९५१ में जुलाई मास में बनारस गया। सख्त गर्मी थी, पंखा पास न था। बितर भी नाकाफी था, मस्तिष्क में अनेक उलझनें भरी हुई थी। वर्षा नहीं हो रही थी, हवा नहीं चल रही थी। खुली छत सोने के लिए नहीं थी। सब जड़-जंगम सरंजाम ऐसे जुट गए थे कि 'निन्दिया रानी' आई ही नहीं। अकस्मात् उस अर्ध निशा में 'राज' से साक्षात् हुआ। 'ब्रज' और 'राधा' उसी के साथ थे। तीनों बातें करने लगे। तीनों नहीं दोनो—'राज' और 'राधा'। ब्रज सुनता था, केवल हँसता था। मैं भी सुनने लगा। सब बातें पते की थीं। कलम मेरे पास थी—और कागज भी। जो कुछ सुना लिख डाला। और तब मैंने

देखा—ओह, यह 'राज' तो सारे संसार की सम्य-असम्य नारियों से पृथक् अकेली ही खड़ी है। केवल अपनी ही सामर्थ्य पर। वह असहाय नहीं है, पर-मुखापेक्षी नहीं है—क्रोध, दैन्य, आवेश, अधैर्य, सबसे पाक-साफ है। वह संयम-कर्तव्य और जीवन के सच्चे तत्त्वों की अधिष्ठात्री है वह आज की नारी-मात्र की पथ-प्रदर्शिका है। मैंने उसे अपराजिता स्वीकार कर लिया। और उस दिन 'ब्रजराज' ने राज के चले जाने के बाद—जब उस भूमि पर—जहाँ उसके चरण-चिन्ह बने थे—साष्टाङ्ग भू-पात करके अपना मस्तक टेक दिया—तो सब की नजर बचाकर मैंने भी उन चरण चिन्हों की एक कोर चूम ली। और मेरा अब तक का जीवन धन्य हो गया।

शान-धाम
दिल्ली शाहदरा
करवा-चौथ

}

चतुरसेन

अपराजिता

१

राज का पत्र पाकर ब्रजराज बड़ी उलझन में पड़ गया। पत्र एक निमंत्रण-मात्र था, उसमें केवल इतना ही लिखा था कि आज शाम को तुम्हारा निमंत्रण है, निमंत्रण ज़रा लम्बा होगा, खूब फुरसत से आना ! ब्रजराज आज ही सन्ध्या की गाड़ी से घर जा रहा था, सब सामान बाँध-बूँध चुका था। कल राज से वह घर जाने की विदाई ले आया था, अब यह अकस्मात् का निमंत्रण कैसा ? परन्तु राज का निमंत्रण नहीं टाला जा सकता था। ब्रजराज को घर जाना स्थगित कर देना पड़ा और वह सन्ध्या होने से कुछ पहले ही राज के घर की ओर चल पड़ा।

ब्रजराज को देखते ही राज बराण्डे में निकल आई। उसने हँसकर कहा—
“बुरा तो बहुत लगा होगा, यात्रा में विघ्न पड़ गया।”

“लेकिन इस निमंत्रण का अर्थ क्या है ?”

“अर्थ लम्बा है, समझने में देर लगेगी, भोजन में भी अभी देरी है, तब तक चलो वहाँ लॉन में बैठकर बात करें।”

“चलो !”

दोनों लॉन में पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए। समय सुहावना था, क्षीण चन्द्रमा बादलों में से भाँक रहा था, और ठण्डी हवा चल रही थी। राज ने एक सफेद साड़ी पहनी थी। ब्रजराज ने कहा—“अब कहो ?”

“आप पूछिए !”

“आप ? आप कौन ?”

“आप ही, आप, और तो कोई यहाँ है नहीं।”

“यह ‘आप’ कब से ?”

“आज से, बल्कि इसी क्षण से।”

“और यदि मैं अस्वीकार करूँ तो ?”

“तो आपसे अनुरोध करूँगी, प्रार्थना करूँगी।”

“खैर देखा जायगा, पहले निमन्त्रण की बात कहो। कल ही मैं तुमसे घर जाने की अनुमति ले गया था। यह असमय का निमन्त्रण कैसा ?”

“यह निमन्त्रण दो आदमियों के बीच मैत्री भाव स्थापित करने के उपलक्ष्य में है।”

“दो आदमी कौन ?”

“एक मैं और दूसरे आप।”

“फिर ‘आप’ ?”

“क्यों नहीं, आप मेरे गुरु नहीं ? अध्यापक नहीं ? शास्ता नहीं ?”

“तुम यह क्या पागलपन की बात कर रही हो राज, तुम्हारी हालत क्या है ? मुझे तुम्हारी बातचीत और हास्य सबमें एक नयापन दीख रहा है।”

“समय पर सब पुराना हो जायगा। आप सह जायँगे, और मैं भी।”

“तुम्हें मेरी कसम राज, साफ-साफ कहो मामला क्या है ?”

“साफ-साफ कहने से कोई लाभ नहीं है, जितना आवश्यक है उतना ही, कहूँगी।”

“उतना ही कहो !”

“तो आज से हम—मैं और आप, जहाँ जिस अवस्था में रहें, परस्पर एक-दूसरे के सच्चे मित्र, शुभ-चिन्तक और सहायक की भाँति रहेंगे। जब तक कि जीवन है।”

“यह तुम क्या कह रही हो ?”

“और अब तक मेरे-आपके बीच जो बातें भावी जीवन के सम्बन्ध में हुईं,—हम लोगों ने जो मनसूखे बाँधे, वे इसी क्षण से सब समाप्त—विस्मृत समझे जायँगे।”

ब्रजराम उठकर खड़ा हो गया। उसने राज के हाथों को छूकर कहा—

“तुम्हारी तबियत शायद ठीक नहीं है, अच्छा हो यदि तुम आराम करो, और मैं जाऊँ ।”

“किन्तु अभी बातें तो बहुत सी बाकी हैं, और भोजन भी तैयार नहीं हुआ है । अभी आप जा न सकेंगे । मैंने तो लिख ही दिया था कि निमन्त्रण ज़रा लम्बा होगा ।”

“लेकिन मैं यह कैसे जान सकता था कि आज तुम पागलों-जैसी बातें करोगी !”

“पागलों-जैसी बातें नहीं कर रही हूँ । मैं जो कुछ कह रही हूँ उस पर मैंने खूब सोच-विचार लिया है ।”

“तो पहेलियाँ न बुझाओ राज, जो कहना है एकदम कह दो !”

“एकदम ? क्या आपने मुझे कभी ऐसा निष्ठुर देखा था ?

“परन्तु आज तो तुम्हारे रंग-दग ही निष्ठुर-जैसे प्रतीत हो रहे हैं ।”

“ऐसा नहीं है, मैं तो वही राज हूँ, जिसे आप भीतर से बाहर तक जान चुके हैं, और वह साहस; जिसका आज इस समय सहारा लेकर मैंने आपको निमन्त्रित किया है, आप ही का दिया हुआ है ।”

“तो तुम्हारा यह मतलब तो नहीं है कि आज से हम तुम दो हैं ।”

“हाँ, परन्तु दो ऐसे—जो परस्पर अकपट मित्र हैं, हृदय के इस पार से उस पार तक ।”

“कल ही मैं तुमसे मिलकर गया था, इसी बीच यह सब हो गया ?”

“कभी-कभी शताब्दियाँ क्षणों में बीत जाती हैं, और कभी एक-एक क्षण वर्षों के समान हो जाता है । यह आप ही तो कहा करते हैं ।”

“तो एक दिन-रात ही मैं शताब्दियाँ बीत गई ? हम तुम दोनों जो कल थे आज वे न रहे । दूसरा जन्म धारण कर चुके ।”

“दूसरा ही क्यों, मैं तो कल से अब तक सैकड़ों बार मरकर जी चुकी । मेरे तो सैकड़ों जन्म हो चुके ।”

“तब मैं बाबू जी के पास जाता हूँ ।”

“नहीं, जो कुछ कहना है मुझ ही से कहिए—और जो कुछ सुनना है

मुझ ही से सुनिए !”

“मुझे कहना कुछ नहीं है, तुम जो सुनाना चाहती हो वह झटपट सुना दो !”

“अच्छा तो सुनिए—इसी मास में मेरा विवाह ठाकुर साहब से हो रहा है, उन्हें तो आप जानते ही हैं ?”

“ब्रजराज का चेहरा सफेद बर्फ के समान हो गया। वह एकटक राज के मुँह की ओर ताकता बैठा रहा।

“कुछ कहना चाहते हैं आप ?” राज ने मरी हुई आवाज में कहा।

“न।”

“यह अच्छा है, अब सुनिए, मैंने इस काम के लिए अपने को केवल एक दिन में तैयार कर लिया, अब आप कितना समय लेंगे ?”

“मुझे क्या करना होगा राज ?”

“पिछली सारी बातें भूल जानी होंगी, मन का दुःख धो बहाना होगा, और अब तक हम लोग खुश खुश जैसे मिलते रहे हैं वैसे ही मिलते रहना होगा।”

“देखता हूँ, मैं तुम्हारे समान साहसी नहीं हूँ।”

“आप मेरे गुरु हैं, शिक्षक हैं, आप मुझसे पीछे न रह सकेंगे, जिस काम में मुझे पूरा दिन लगा है वह आपको कुछ मिनटों ही में कर डालना होगा।”

“क्या काम है वह ?”

“मन का बोझ एकदम उतार फेंकना होगा और इस नए सम्बन्ध का अभि-नन्दन करना होगा।”

“तो राज, तुम अपना बल मुझे दो, मैं तो यह चोट सहन न कर सकूँगा। या तो मेरा प्राण ही निकल जायगा, या विक्षिप्त हो जाऊँगा। यह मैं सोच ही नहीं सकता कि मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित रह सकता हूँ।”

“जब मैं रह सकती हूँ तो आपको भी रहना होगा। मैंने तो सारा साहस आप ही के भरोसे किया है, आप सहारा न देंगे तो मैं तो डगमगा जाऊँगी।”

‘किन्तु राज, जो बात तुम नहीं बताना चाहतीं, वह मैं जानना भी नहीं

चाहता, यह मैं समझता हूँ कि तुम्हारे इस निर्णय का कोई बहुत ही भारी कारण होगा, लेकिन मैं क्या करूँ, मेरे जीवन का सारा ही सहारा तुम हो !”

“उसी प्रकार मेरा सारा ही साहस आप पर निर्भर है। मैंने जो निर्णय किया है उसे मैं आपकी सहायता के बिना तो निभा ही न सकूँगी। अब मैं आपकी शरणागत हूँ,” उसका स्वर काँपा और शायद आँखें भी गीली हो गईं।

“मुझे क्या करने को कहती हो राज !”

“सम्भव है, आपको मुझसे अधिक कठिनाई पड़े। पर आप हैं भी तो महा शक्ति-पुञ्ज। मेरे अन्दर जो शक्ति है, वह तो आप ही की दी हुई है, अब आप मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने जीवन के कर्तव्य-भार को निवाह सकूँ।”

“आशीर्वाद देता हूँ राज !”

“विवाह मे तुम्हें उपस्थित रहकर सब कामों में हाथ बटाना होगा।”

“अच्छा !”

“और उसके साथ एक अच्छी सी लड़की ठीक करके समझते हैं : आप ? पसन्द मैं करूँगी, और मैं ही व्याह का सारा सरंजाम भी करूँगी।”

“इस बंधन में क्यों बाँधती हो, पहली बात ही काफी है।”

“काफी नहीं है, जीवन-संग्राम लड़ना होगा, इस जीवन-संग्राम में पुरुष का शस्त्र स्त्री है और स्त्री का शस्त्र पुरुष, आप बिना शस्त्र लड़ेंगे कैसे ?”

“और यदि मैं लड़ने ही से इन्कार करूँ ?”

“वह तो अब समय ही बीत चुका, आपको लड़ना होगा !”

“तो राज, जैसा तुम कहोगी मैं वही करूँगा।”

“ईश्वर आपको चिरायु करे।”

“तो अब जाऊँ।”

“वाह, भोजन तो अभी हुआ ही नहीं, जाओगे कैसे। लेकिन उदास क्यों हो गए ?”

“धीरे-धीरे ही तो सहन होगा।”

“घर कब जायेंगे ?”

“अब नहीं जाऊँगा, छुट्टियों में यहीं रहूँगा। ब्याह के काम-काज में बाबू जी का हाथ बटाऊँगा तुमने कहा न—इसी मास में।” ब्रजराज ने सूनी दृष्टि से राज की ओर देखा।

“हाँ, वह तो है। परन्तु एक बार आपको घर तो जाना ही पड़ेगा।”

“किसलिए ?”

“पिता जी से बातें करने, वे प्रतीक्षा कर रहे होंगे। बाबूजी ने उन्हें कल ही खत लिख दिया था।”

“खत तो मैंने भी लिख दिया था। कल यहाँ से जाने के बाद ही मुझे उनका खत मिला था उसमें उन्होंने आवश्यक सामान की फहरिस्त लिख भेजी थी, और वे सब चीजें खरीदकर ले आने की आज्ञा दी थी।”

“आपने खरीद ली वे सब चीजें ?”

“आज दिन-भर इसी काम में तो हम लोग जुटे रहे, मैं और भूपेन्द्र।”

“भूपेन्द्र, वह आपको कहाँ मिला ? है कहाँ वह ?”

“वही है, सब बाँध-बूँध कर रहा है, मैं तुमसे पूछना ही चाह रहा था कि भूपेन्द्र को दो दिन के लिए घर ले जाऊँगा ?”

“उसे आपने इस काम में साथ क्यों लिया ?”

“उसने कल हमारी सब बातचीत सुन ली थी। आज सुबह ही वह मेरे पास आ पहुँचा। बोला—‘जीजी की पसन्द मैं जानता हूँ। साड़ियाँ और जेवर सब मैं अपने पसन्द के खरीदूँगा।’ वस मैंने साथ ले लिया।” भूपेन्द्र ने जो उन्हें ‘जीजा जी,’ कहकर सम्बोधित किया था वह सम्बोधन उनके मुँह से बाहर नहीं निकला।

“इसीसे आज वह मुझे दिखा ही नहीं।” राज के होठ फड़के। कुछ रुक-रूक उसने कहा—“वापस भी तो हो सकती हैं ये सब चीजें।” उसका कण्ठ-स्वर काँप गया।

“खैर देखा जायगा। लेकिन पिता जी से क्या कहना होगा ?”

“उनसे तो यही कहना होगा कि किन्हीं कारणों से आपने ही विवाह का

विचार स्थगित कर दिया है।”

“क्या मैं ऐसा लिखूँ ?”

“नहीं तो बाबू जी की मान-मर्यादा नहीं रहेगी, उन्होंने स्वयं पिता जी को वरदान दिया था, कल ही जो खत लिखा है उसमें ब्याह की तारीख लिख दी है। अब क्या उन्हीं की ओर से इन्कार जायगा ? पिता जी भी यह कैसे सहेंगे, और बाबू जी तो जान दे देंगे, वचन-भंग नहीं करेंगे।” राज ने जैसे आर्त-नाद किया।

ब्रजराज सोच में पड़ गया। उसने आँख उठाकर राज को देखा। राज का मुँह राख के समान निस्तेज हो रहा था, और आँखें पथरा रही थीं, ब्रज-राज ने घबराकर खोए-से स्वर में कहा—“चिन्ता मत करो राज, मैं सब ठीक कर लूँगा।”

“तो आप घर जायेंगे ?”

“नहीं, जा न सकूँगा, पिताजी को पत्र लिख दूँगा। सामने जाकर तो शायद मुझसे कुछ कहते-सुनते न बन पड़े। उन...” ब्रजराज एकाएक चुप होकर राज का मुँह ताकने लगा।

“राजवती ने शंकित स्वर में कहा—“और क्या बात है ?”

“कुछ नहीं, पिताजी ने उन व्यक्तियों की भी फहरिस्त भेजी है, जिन्हें निमन्त्रण भेजे जा चुके हैं, और जिन्हें निमन्त्रण भेजे जायेंगे उनके नाम पूछे थे।” ब्रज ने नीची निगाह करके धीरे से कहा।

राज चुपचाप बैठी रही। उसकी आँखों से आँसू बह चले।

ब्रजराज ने हँसकर कहा—“एक और बात भी लिखी थी पिता जी ने राज !”

राज बोली नहीं। आँसू-भर पलक उठाकर आँखों ही में प्रश्न किया।

ब्रजराज बहुत इच्छा रहते हुए भी हस न सका। उसकी आँखें भी भर आईं।

राज ने पूछा—“और क्या लिखा है पिता जी ने ?”

“लिखा है, सब काम बिटिया से और बाबू जी से पूछकर करना !”

एक गहरा साँस छोड़कर ब्रजराज एकदम उठ खड़ा हुआ। उन्होंने कहा—
“राज, देखो अब भोजन में देर कितनी है।”

पर राज एकदम मूर्च्छित होकर कुर्सी से नीचे लुढ़क गई। ब्रजराज ने घबराकर उसे उठाया और कुर्सी पर बैठाकर रुमाल से उसके मुँह पर हवा की। कुछ ही क्षणों में राजवती ने होश में आकर ब्रजराज की ओर देखा। ब्रजराज ने दुःखित स्वर में कहा—“साहस करो राज, नहीं तो मुझसे भी कुछ करते-धरते न बनेगा।”

राज का सब अंग काँप रहा था। वह बोली नहीं। धीरे से कुर्सी से उठ खड़ी हुई। ब्रजराज ने उसे हाथ का सहारा देकर कहा—“चलो देखें, भोजन में कितनी देर है।”

दोनों धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़कर कमरे में आए।

२

ठाकुर साहब का नाम राघवेन्द्रसिंह था। वे स्थानीय एडीशनल मजिस्ट्रेट थे। उनका घराना बहुत पुराना एवं सम्पन्न था। सत्तावन के विद्रोह में अंग्रेजों की भारी सेवा करके राज-भक्ति के सिले में उनके प्रपितामह ने दो मुकम्मिल इलाके मैनपुरी और आगरा के जिलों में पाए थे। भारत में अपनी उच्च शिक्षा समाप्त करके आपने इंग्लैंड जाकर बैरिस्टरी और आई० सी० एस० पास किया और भारत लौटकर मजिस्ट्रेट बने। बड़े दबदबे के मजिस्ट्रेट थे। राज-भक्ति उनके रक्त का अंश बन गई थी। राजपूती शान और आन उनकी खानदानी वस्तु थी। ठाकुर साहब की अवस्था अब चालीस के निकट पहुँच रही थी, परन्तु कहा जाता था कि अभी तक आप अविवाहित हैं। भारत और इंग्लैंड के अन्वय अनेक सुने जाते थे परन्तु प्रमाण कुछ न था। स्वभाव के रूखे थे, कड़े हाकिम प्रसिद्ध थे। आपके फैसले प्रसिद्ध होते थे। उनका उलटना आसान न था। भारतीय और अंग्रेज-अफसरों में मिलनसार भी प्रसिद्ध थे। अंग्रेज-अफसरों को खुश रखने में वे सचेष्ट रहते थे तथा अंग्रेजी लिबास और अंग्रेजी रहन-सहन में रहने के शौकीन थे। साधारण लोगों से बहुत कम मिलते थे।

राज के पिता गजराजसिंह पुराने टाइप के क्षत्रिय थे। अपने खानदानीपन का उन्हें बड़ा खयाल था। वे एक छोटे से ज़मींदार थे। उनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी, सबसे बड़े पुत्र त्रिलोकसिंह आगरा में ही बकालत करते थे। मझले आई० सी० एस० पास करने इंग्लैंड गए थे, सबसे छोटे स्थानीय कालेज में पढ़ते थे। कन्या राजवती उनकी तीसरी सन्तान थी, उसने एम. ए. फाइनल किया था। ठाकुर गजराजसिंह यद्यपि अपने खानदानी स्तव का खयाल रखते थे, फिर भी वे एक देश-भक्त समझदार और धर्म मीर पुरुष थे। सन्तान को उच्च शिक्षित बनाने के वे पक्ष में थे। उदारमुधारवादी थे तथा न्याय समाजी विचार रखते थे। वे स्वामी दयानन्द के भाषणों को सुन चुके थे। स्त्री-शिक्षा के वे भारी समर्थक थे, बच्चों की शिक्षा की सहूलियत के लिए ही वे आगरा में आ बसे थे। जहाँ उनके ज्येष्ठ पुत्र त्रिलोकसिंह प्रैक्टिस कर रहे थे।

त्रिलोकसिंह कांग्रेसी विचार रखते थे। वे अपनी प्रैक्टिस में कम और देश की राजनीति में अधिक ध्यान देते थे। प्रैक्टिस धीमी चल रही थी। वे एक परिश्रमी, मितभाषी और निष्ठावान् वकील थे। दीन-नारीय किसानों के प्रति उनका खिचाव था। उनका रहन-सहन सादा, विचार गंभीर और व्यक्तित्व सरल था।

मझले वीरन्द्रसिंह तेजवान पुरुष थे। मिजाज भी उनका तीखा था। खानदानीपन के विचार उनके पिता के ही समान थे। वे भी अंग्रेजी निष्ठा के समर्थक थे। रुखाव रखने और हुक्मन करने की उनकी बड़ी लालसा थी। बड़े भाई से उनका मेल नहीं खाता था। वे एक खर्चाले स्वभाव के आदमी थे।

छोटे लड़के भूपेन्द्र और कन्या राजवती दोनों का बड़ा भारी सौहार्द था। दोनों साहित्य और कला के प्रेमी थे। दोनों कल्पना के कोमल वातावरण में रहते, बहुधा ललित कला और संगीत की चर्चा करते और कवि-सम्मेलनों में भाग लेते। वे एकान्त प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेते और सरस्वती के मन्दिर की एकनिष्ठ पूजा करते थे। दीन-दुनिया से जैसे उनका कोई सम्बन्ध ही न था, राज की अवस्था २१ को पार कर रही थी और भूपेन्द्र १६ वें वर्ष में पदार्पण कर चुका था। दोनों साथ ही कालिज जाते और साथ ही पढ़ते, लिखते, घूमते तथा सैर-सपाटा आदि करते थे।

तीन भाइयों के बीच अकेली पुत्री होने से ठाकुर साहब राज को पुत्र से भी अधिक चाहते—उसकी किसी भी इच्छा में बाधा न डालते थे। उसके चरित्र-बल और निष्ठा पर वे विश्वास रखते और उसे प्रसन्न देखकर प्रसन्न होते थे।

राज भी आग्रही स्वभाव की लड़की थी। वह बड़ी कुशाग्र बुद्धि, हँसमुख और परिश्रमी थी। लड़कों के साथ पढ़ती और सबसे प्रथम रहती। उसमें पिता की आन, खानदानीपन, बड़े भाई की देश-भक्ति, मझले की शान-शौकत और छोटे भाई का विद्या-व्यसन—माता की धर्म-भीरुता आदि सब जैसे एकत्र हो गई थीं। वह प्रत्येक काम सोच-विचारकर करती थी, पिता के प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा थी। उसने समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थ शास्त्र का अध्ययन किया था—एक प्रकार से वह छोटे भाई भूपेन्द्र की शिक्षिका भी थी। उसके विचार बहुत ऊँचे थे। वह भावुक भी बहुत थी ज़रा सी बात से उसके मन को ठेस लग जाती थी। जब उसे गुस्सा आता तो सिवा पिता के और किसी की उसके पास जाने की हिम्मत ही नहीं होती थी।

ब्रजराज उसका कालिज का साथी था। वह उससे सीनियर था। अब से ४ वर्ष पूर्व उसका ब्रजराज से परिचय हुआ था। वह एक साधारण किसान का इकलौता बेटा था। वह बड़ा चरेत्रवान, मेधावी और उत्तम विचार तथा उत्कृष्ट स्वास्थ्य वाला तरुण था। कला-विज्ञान, अर्थ शास्त्र और राजनीति उसके अध्ययन के प्रिय विषय थे। पहले एक खूबूर की भाँति उसका राज से परिचय बढ़ा। पीछे उसने खूशन-फीस लेनी छोड़ दी। धीरे-धीरे दोनों में प्रेम की भावनाएँ बढ़ती गईं। और अब से एक वर्ष पहले ही यह तय हो चुका था कि ज्यों ही राज एम० ए० फाइनल कर ले और ब्रज एल० एल० बी० की परीक्षा दे लें दोनों को विवाह-सूत्र में बाँध दिया जाय। दोनों एक-दूसरे को हृदय से प्रेम करते थे। दोनों एक दूसरे के भूखे-प्यासे थे। दोनों के विचार-निष्ठा और जीवन-ध्येय एक थे। दोनों एक सुखी भावी संसार का स्वप्न देख रहे थे। अब दोनों की परीक्षाएँ निवट चुकी थीं और दोनों का विवाह इसी पखवाड़े में होने जा रहा था। इसके लिए वह सारी व्यवस्था और आवश्यकताओं पर अपने पिता

से परामर्श करने राज तथा उसके पिता के परामर्श से अपने घर जा रहा था ।

परन्तु राज के इस निमन्त्रण से एक ही दिन में सारा निर्णय उलट-पलट हो गया । राज ने ब्रजराज को कोई कारण नहीं बताया । उसने पूछना भी उचित नहीं समझा । केवल अपने को राज की इच्छा पर छोड़ दिया । उसने देखा था कि राज अपरिशील साहस करके हँस रही है और अपना निर्णय सुना रही है । वह देख रहा था—राज की आँखों की वेदना और हँसते हुए होठों का मूक रुदन । उसने केवल यही सोचा कि इस परिवर्तन का अवश्य कोई गम्भीर कारण है, और राज को अकस्मात् ही आत्म-बलिदान को तैयार होना पड़ा है । राज-जैसी उसकी शिष्या ऐसे अवसर पर जिस त्याग, दृढ़ता तथा उच्च भावना का परिचय देगी, यह वह जानता था । वह समझ गया था—राज पर कोई भारी विपत्ति आई है, इसीसे वह आत्म-बलिदान देने पर तुल गई है, अब उसे प्राणायु से सहायता देना ही उसका कर्तव्य है । और उस कर्तव्य को प्रत्येक मूल्य पर पालन करने की उसने मन में ठान ली ।

राज का विवाह ब्रज से हो इस सम्बन्ध में केवल राज के माता-पिता ही सहमत न थे, प्रत्युत राज के दोनों भाई भी सहमत थे । ब्रज के पिता धनी नहीं हैं, यह तो ठीक है, पर राज के मन में जो प्रगाढ़ प्रेम ब्रज के प्रति था वह सब जानते थे । फिर ब्रज का व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था । उन्होंने उदारता पूर्वक वह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया था । राज के पिता स्वयं देहात जाकर ब्रज के पिता को अब से डेढ़ वर्ष पूर्ण वाग्दान दे आए थे तथा ब्रज से सब सत्ताह-मशविरा करके उन्होंने कल ही उन्हें एक खत भी लिखा था जिसमें विवाह की निश्चित तिथि तथा अन्य सब आवश्यक बातों का निर्देश था ।

एकाएक विवाह का यह निश्चय ही नहीं पलटा, प्रत्युत राज का विवाह ठाकुर साहब से होना भी तय हो गया । इसे सुनकर घर के सभी लोगों को आश्चर्य हुआ । वास्तव में पिता-पुत्री को छोड़कर तीसरा कोई इसके भेद को नहीं जानता था । जब राज के सबसे बड़े भाई त्रिलोकसिंह ने इस सम्बन्ध में सुना तो उन्होंने पिता से उसका कारण पूछा । उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि राज से पूछो । राज ने भाई से हँसकर केवल इतना ही कहा—“यही ठीक है भैया, और वह भाग गई ।

त्रिलोकसिंह चुप हो गए। परन्तु छोटे भाई भूपेन्द्र से तो राज की खूब ही धूम-धाम से झड़प हुई। पहले तो वह कुछ समझा ही नहीं, जब घरमें विवाह की तैयारियाँ होने लगीं तो एक दिन उसने राज को धर लिया और कहा—“बताना पड़ेगा दीदी !”

“क्या ?”

“सब बात ।”

“कौन सी बात ?”

“यह सब क्या हो रहा है, बता !”

“ब्याह की तैयारी, तेरी दीदी का ब्याह है, इतना भी नहीं समझता !”

“हाँ है, पर दीदी अपने कमरे में गुम-सुम क्यों पड़ी रहती है, खोखली हैंसी क्यों हँसती है, अब उसका मेरे साथ लड़ाई-झगड़ा क्यों नहीं होता है, घूमने क्यों नहीं जाती है, घण्टों की चुप्पी के क्या माने हैं !”

“तू पागल है, यदि मेरा ब्याह है तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं नाचूँ ?”

“अब ब्रज दादा क्यों नहीं आते ?”

“किसी काम में लगे होंगे ।”

“पर ब्याह तो उन्हीं के साथ होना था दीदी !”

“क्यों ?”

“यह मैं क्या जानूँ, पर होना तो था, ये ठाकुर साहब कहाँ से कूद पड़े ?”

“तू बाबू जी से भी बड़ा हो गया ?”

“पर दीदी, मुझे एक बात बता,” भूपेन्द्र बहन के गले से लिपटकर आँसू बहाने लगा ।

राज को भी रोना पड़ा, उसने कहा — “भैया, अभी तुम बालक हो । मैं स्त्री जाति की हूँ ! स्त्रियाँ थोड़ी ही उम्र में समझदार हो जाती हैं । इसलिए तुम सब बात नहीं समझ सकोगे । बाबू जी जो कर रहे हैं वही ठीक है ।

“नहीं है, नहीं है, मैं ब्रज दादा के पास जाता हूँ ।”

“तेरे जाने से क्या होगा ?”

“मैं उन्हें बुला लाऊँगा, क्या वे रुठ गए हैं ?”

“नहीं रे, रुठने की क्या बात है, पर वे क्या ठाकुर साहब से भी अच्छे हैं, जानता है कितनी तनखा मिलती है उन्हें। और कितना सुआव है उनका कोठी कैसी बढ़िया है।”

“सो होगी, वहाँ दीदी का व्याह नहीं होगा, मैं बाबू जी से कहूँगा।”

“पागल, ये बातें बाबू जी से कहने की नहीं?”

“तो अम्मा से कह दूँगा।”

“लेकिन भैया, ये मामले घर के बुजुर्ग करते हैं—हम तुम नहीं। हमें उनकी आज्ञा का पालन करना होगा।”

“क्यों करना होगा, वे कहेंगे तो क्या हमें आग में कूदना पड़ेगा?”

“जरूर पड़ेगा।”

“वाह, मैं नहीं कूदूँगा।”

“लेकिन भैया वे हमारे बाबूजी जो हैं।”

“तो इससे क्या, वे हमें आग में कूदने को क्यों कहेंगे?”

“नहीं कहेंगे, इसीसे तो कहती हूँ वे जो करते हैं ठीक करते हैं, हमें उनकी आज्ञा माननी चाहिए।”

“नहीं यह बात ठीक नहीं है।”

“तुम नहीं समझ सकते भैया, गड़बड़ न करो—जो हो रहा है ठीक रहा है।”

भूपेन्द्र को राह नहीं मिली। वह छुटपटाने लगा। उसका मन विद्रोह भर गया। उसने ब्रज से भी बात की, उसने हँसी में ढाल दिया और माँ से व तो वे चुप हो गईं।

जब विवाह में केवल तीन दिन रह गए तो पिता ने एकान्त में पुत्री वार्तालाप किया।

पिता ने कहा—“राज, मेरा मन कहता है, इस विवाह को रोक दूँ, अकुल नहीं बिगड़ा।”

“वाह, यह भी कहीं हो सकता है।”

“अच्छी तरह हो सकता है, मैं तो तेरा बलिदान नहीं देख सकता।

मुझे इतना निठुर न बना !”

राज हँस दी, उसने कहा—“बलिदान की क्या बात है ?”

“इस तेरी हँसी मे मैं भूलने वाला नहीं हूँ, तेरा जो रोम-रोम हाहाकार कर रहा है वह क्या मैं देखता नहीं हूँ। घर-बार-ज़मींदारी नीलाम हो जाय, उनका कर्ज चुका दिया जायगा। मेरा बेटा विलायत पास करके आयगा, ढेर रुपया कमा देगा।”

“और खानदान की इज्जत ? जब नीलाम की डुगडुगी पिटेगी तब ! उसे बाबू जी, क्या मैं देख सकूँगी ?”

“मैं खानदान की इज्जत को देखूँ कि बेटे के जीवन को !”

“खानदान की इज्जत पहली चीज है बाबू जी, यह सौभाग्य की बात है कि उन्होंने खुद ही यह सौदा किया, सिर्फ मुझे लेकर सारे कर्ज से भरपाई करने को तैयार हो गए। फिर वहाँ तो मैं राज रानी बनूँगी। इसमें बलिदान की तो कोई बात ही नहीं है।”

“लेकिन राज, मैंने ब्रज के पिता को वाग्दान दिया था।”

“कन्या-दान तो नहीं दिया ?”

“परन्तु मेरा वचन !”

“वह झूठा नहीं जायगा।”

“कैसे ?”

“मैंने ब्रज से बात कर ली है। वह पिता जी से कह देंगे कि वे स्वयं ही इस विवाह से इन्कार कर आए हैं।”

“ब्रज क्या ऐसा कहेगा ?”

“क्यों नहीं। क्या उसे हमारे खानदान की और आपकी इज्जत का खयाल ही नहीं है ?”

“खैर मान लो, पर यह तो स्पष्ट है कि तुम्हारा ठाकुर साहब के प्रति कोई आकर्षण भी तो नहीं है, तुम ब्रज से प्रेम करती हो। फिर ठाकुर साहब ने मुँह खोलकर मुझसे कहा—‘कि या तो सारा कर्जा एक मास में वेवाक कीजिए, या इसी मास में मेरे साथ लड़की की शादी कर दीजिए वरना सारा घर-बार ज़मी-

दारी कुर्क करा ली जायगी।”

“तो यह तो बहुत अच्छा हुआ बाबू जी, बेटी का ब्याह तो करना ही पड़ता है। बेटी घर में तो खपती नहीं। अब यदि उसके बदले में सात लाख के कर्जे की बेबाकी भी हो, बाप-दादों का घर-द्वार और इज्जत बनी रहे तो और क्या चाहिए। मुझे तो बाबू जी, ठाकुर साहब देवता प्रतीत होते हैं। अब आप दुविधा त्याग दीजिए और विवाह-कार्य सम्पन्न कीजिए।”

“मेरी बेबी, यह तेरो आवाज़ तो नहीं है, तेरे भीतर से यह कौन बोल रहा है, जो पिता के लिए अपनी बलि देने को हँस-बोलकर तैयार है।” बूढ़े पिता रोने लगे।

राज ने हँसकर पिता के गले में बाँहें डाल दी। उसने कहा—“बाबू जी, आप समझते नहीं हैं, देखिए माता जी से या भाई साहब से इस मामले में एक बात भी मत कहिए—नाहक उपद्रव खड़ा होगा।”

गजराजसिंह कुछ देर चुप बैठे रहे और फिर बोले—“तो तूने यह तय कर लिया है ?”

“इसमें इतना सोचने-विचारने की बात ही क्या है, मैं इस विवाह से बहुत खुश हूँ पिता जी !”

क्षण-भर बूढ़े बाप ने पुत्री के हँसते हुए किन्तु सूखे होठ देखे और कुर्ते से आँखें पोंछते हुए चले गए।

३

परन्तु ब्रजराज को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सहसा उसके हृदय पर जो गहरा आघात लगा था—वह तो था ही। अब इसी बात को लेकर पिता-पुत्र में गहरा संघर्ष छिड़ गया। ब्रजराज ने पिता को एक संक्षिप्त पत्र लिख दिया—“आप विवाह की तैयारी रोक दीजिये मैंने यह विवाह न करने का निश्चय कर लिया है, विवाह नहीं होगा। निमन्त्रित जनों को भी सूचित कर दीजिये।” इस पत्र का जो असर बूढ़े पिता पर हुआ उसकी युवक ब्रजराज ने कल्पना भी नहीं की थी। पुत्र के उत्तर में स्वयं ठाकुर साहब अपनी लाठी लेकर

होस्टल में आ उपस्थित हुए। आते ही उन्होंने पूछा—“यह क्या किया ब्रज, ऐसा खत क्यों लिखा ?”

पिता की अकस्मात् उपस्थिति उनकी मुखमुद्रा और क्रोध तथा शोक से विकल वाणी को सुनकर ब्रजराज अवाक् अमरावती की भाँति खड़ा हो गया। पिता का शिष्टाचार भी वह न कर पाया।

परन्तु पिता के प्रश्न का उत्तर दिये बिना निस्तार न था। इस काम से उनके नाम-प्रतिष्ठा और खानदान की इज्जत सभी धूल में मिल जायगी। लोग क्या कहेंगे; ये सारी बातें रोकर, चिल्लाकर, क्रोध करके बूढ़े पिता ने पुत्र से कहा और फिर ब्रज की स्वर्गीया माता को बार-बार याद करके वे बालक की भाँति रो उठे।

ब्रज ने धीरे से धरती पर बैठकर पिता के दोनों चरण अपनी गोद में रख लिए। उनके घुटने पर सिर टेककर वह निरीह बालक की भाँति बैठा रहा। ठाकुर ने कहा—“क्या उन्होंने इन्कार कर दिया या तूने ही विचार बदल दिया?”

“मैंने ही विचार बदल दिया।”

“क्यों ?”

“यह न पूछिए !”

“तुमने तो कह दिया ‘न पूछिए’—पर मेरी तो मौत हो गई। मैं लोगों को कैसे मुँह दिखाऊँगा, कारण तो बताना ही पड़ेगा।” बूढ़े पिता ने संदेह से पुत्र की ओर देखा—और फिर कहा—“क्या लड़की में कोई दोष दीख पड़ा ?”

“पिता जी, राज को तो आप जानते हैं, ऐसी शंका आप क्यों करते हैं ?”

“तब फिर बात क्या है ?”

“बात कुछ नहीं है पिताजी, यह विवाह मुझे स्वीकार नहीं है।”

“क्या वे लड़की का ब्याह नहीं करेंगे ?”

“वे क्यों नहीं करेंगे, उन्हें बहुत ठिकाने हैं, वे करें।”

“मैं यह जानना चाहता हूँ कि विवाह के सम्बन्ध में उनके क्या इरादे हैं।”

“जब मैं मना ही कर चुका तो उनके इरादे की क्या बात है, वे जहाँ चाहें करें।”

“तुम्हारी मना ही तो मैंने सुनी, परन्तु उनका क्या विचार है यह भी तो मैं जान लूँ ?”

“वे तो अपनी लड़की का ब्याह कर रहे हैं ।”

“ब्याह कर रहे हैं ? कहाँ ?”

“ठाकुर राघवेन्द्रसिंह से ।”

“ठाकुर राघवेन्द्रसिंह से ?” बूढ़े ने गरजकर कहा—“ठीक है अब समझा ; डिण्टी साहब से रिश्ता हो रहा है । फिर भला देहाती गरीब किसान को वे क्यों बेटी देंगे ? पर कहे देता हूँ मैं गजराजसिंह की हवा खराब कर दूँगा, मैं ठाकुर हूँ चमार नहीं, मैं उनसे लड़की माँगने नहीं गया था, वह हाँ मेरे द्वार पर तिलक लेकर गये थे । पर अब तो देखता हूँ दुनिया में गरीब की इज्जत बचनी ही मुश्किल है । उन्होंने लाठी सभाली और उठ खड़े हुए ।

परन्तु ब्रजराज ने पिता के पैर नहीं छोड़े । “उसने कहा—“आप कहाँ जा रहे हैं पिताजी ?”

“जाता हूँ, जरा गजराज के पास, दो-दो बातें हो जायँ । पूछूँगा—‘एक बेटी पर दो-दो दामाद ! यह कैसी हिमाकत ?’”

“पर पिता जी, आप जो सोच रहे हैं, वह बात तो है नहीं,” ब्रजराज ने कातर वाणी में कहा—“उन्होंने तो वचन भंग किया नहीं, न उनका कोई दोष है, यह निर्णय तो स्वयं मेरा है । अपराध सारा ही मेरा है ।”

“लेकिन तेरा यह निर्णय क्यों है मैं भी तो सुनूँ ?”

ब्रजराज ने अब असीम साहस का परिचय दिया । उसने कहा—“पिता जी बात यह है कि मैं किसी दूसरी लड़की से ब्याह करना चाहता हूँ ।” उसका कण्ठ सूख गया और स्वर खोखला हो गया ।

बूढ़े ठाकुर यह बात सुनकर तमतमाकर उठ खड़े हुए । उन्होंने भटका देकर पुत्र को अपने चरणों से दूर फेंक दिया । फिर गहरे शोक और क्रोध से अभिभूत होकर उन्होंने कहा—“अच्छा, यह बात है, तूने मेरे और उनके दोनों के खानदान को बड़ा लगा दिया । तुम्हें इतनी शिक्षा देकर मैं धन्य हुआ । और तुम्हारे-जैसे सुपुत्र को जन्म देकर तुम्हारी स्वर्गीया माता की कोख भी धन्य हुई ।

तुमने मेरा . . . न भंग किया, बेचारे गजराज की इज्जत खाक में मिलाई, और मुझे तो उन्हें मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रखा। बहुत अच्छा किया पुत्र, परन्तु मैंने तो तुम्हारी स्वीकृति के बाद ही गजराज को वचन दिया था। अब वेटी का बाप क्या समझेगा ? वह कहेगा—‘हमने किसी ठाकुर से रिश्ता नहीं किया था चमार से ……’ उनका कण्ठ-स्वर अवरुद्ध हो गया। वे बालक की भाँति फूट-फूटकर रो उठे। फिर उन्होंने आँसू पोंछकर सीधे तनकर खड़े होकर कहा—“ठीक है, तुम पढ़े-लिखे हो, स्वतन्त्र हो, अपनी लाभ-हानि स्वयं सोच सकते हो, बूढ़े बाप की अब तुम्हें क्या आवश्यकता है। मैं सोचता था — राज-जैसी ब्रिटिया मेरे उस घर को उस दीपक की ज्योति से आलोकित करेगी जिसे वह अपने सौभाग्यांचल की ओट में जलाकर लायगी। १८ वर्ष से सूना मेरा हृदय और घर लक्ष्मी के आवास से जगमग होगा। तुम्हें तो वह बात याद भी न होगी जब तुम्हारी माता तुम्हें केवल सात वर्ष का छोड़कर परलोक सिधारी थी। मरते समय उसने कुछ कहा था। उस मैंने भी कुछ वचन दिये थे। मैं समझता था अब मैं उन वचनों को पूरा करके तुम्हारी माँ के ऋण से उन्मृण होऊँगा। परन्तु पिता का हृदय भी कितना दुर्बल होता है। अच्छा घेरे खुश रहो ! परन्तु याद रखो, आज से आगे किसी से यह भूलकर भी न कहना कि तुम ठाकुर श्योदनसिंह के लड़के हो तथा मुझे कभी मुँह भी मत दिखाना !”

इतना कहकर बूढ़े ठाकुर जवान पुरुष की भाँति छाती सीधी तानकर कन्धे पर अपनी लाठी रखकर एकवारगी ही पुत्र की ओर से पीठ फेरकर चल दिए। लौटकर एक बार देखा भी नहीं। और ब्रजराज अवाक् और विमूढ़-सा खड़ा-का-खड़ा रह गया।

४

और भी बहुत-सी बातें हुईं। राज के बड़े भाई त्रिलोकसिंह ने पिता से जब-जब विरोध किया तो उन्होंने सब दायित्व राज पर डाल दिया। राज से कहा तो उसने हँसकर, लजाकर और जैसे भी संभव हुआ—भाई को विश्वास दिला दिया कि यह जो कुछ हो रहा है उसी की इच्छा से ठीक-ठीक हो रहा है। माता को

भी राज ने सहमत कर लिया ।

अन्ततः ठीक समय पर शुभ मुहूर्त में राज का विवाह ठाकुर राघवेन्द्रसिंह से सम्पन्न हो गया । विवाह में खूब धूम-धाम रही । डिण्डी साहब की शादी में सभी छोटे-बड़े अफसर शरीक हुए । रोशनी, गाने-बजाने, आतिशबाजी और खेल-तमाशों की धूम रही । ठाकुर साहब ने अपनी शान में चार चाँद लगा दिए । लोग बारात को देखते थे और बाह-बाह कहते थे । ब्रजराज तीन दिन से रात-दिन अथक परिश्रम से बारात की सेवा-खातिर और इन्तजाम में लगा था ।

तीसरे दिन, बारात की विदाई थी, दहेज का सामान सजाया जा रहा था । ब्रजराज ने चुपचाप तीन बड़े-बड़े सन्दूक लाकर दहेज के कमरे में रख दिए । इसके बाद एक-एक करके उनमें से साड़ियाँ, चाँदी के बर्तन, जड़ाऊ जेवर और बहुत-सी सामग्री निकालकर फैला दी गई । लोगों ने देखा और चकित हो गए । राज की माँ ने आकर अधीर होकर ब्रजराज को छाती से लगाकर कहा—“यह क्या किया बच्चा !”

ब्रजराज ने कहा—“हे ही क्या, माँ राज के लिए थोड़ी-सी चीजें हैं !”

ठाकुर गजराज ने क्षण-भर सब देख-भालकर गद्गद् कण्ठ से ब्रजराज से कहा—“ब्रज, हमें तूने आखें ऊँची करने योग्य भी नहीं रखा ?”

इसी समय समाचार सुनकर राज कमरे में आ गई । एक नज़र उसने ब्रज के लिए हुए सामान पर डाली—ब्रजराज की ओर देखा । उस दृष्टि को सहने में असमर्थ होकर ब्रजराज धीरे से कमरे से खिसक गया ।

बहुत देर तक राज खड़ी कुल्लू सोचती रही । फिर उसने मन-ही-मन कुल्लू संकल्प किया, और उसके नेत्रों में दृढ़ता की एक आभा आई । वह वहाँ से अपने कमरे में चली गई । उसको कॉलिज की साथिनी-सहेलियाँ सभी वहाँ थीं, उन सबको उसने उस कमरे में बुलाकर भीतर से कमरा बन्द कर लिया । उसने एक-एक करके खब पर दृष्टि डाली । फिर स्थिर स्वर में कहा—“सखियो, तुम सब मेरी प्राणों से बढ़कर प्यारी हो, हम सदैव एक प्राण दो शरीर रहीं हैं, आज मेरे विवाह के उपलक्ष्य में तुम सब बड़े-बड़े उपहार लेकर आई हो, लेकिन बुरा मत मानना सखियो, वे उपहार मुझे कुल्लू भाये नहीं—मैं तुम सबसे आज मन-

चाहा उपहार लेना चाहती हूँ। क्या तुममें से किसी को उब्र है ?”

सखियाँ इस बात को सुनकर चमत्कृत हुईं। एक ने कहा—“यह क्या मजाक है राज, तुम हमसे चाहती क्या हो !”

“जो चाहती हूँ वही लूँगी, पहले तुम वचन तो दो।”

“अरी पगली, वचन की क्या बात है हम सब तो एक हैं। जो एक का है वही सबका है। जैसे तेरा सब-कुछ हमारा है—वैसे ही हमारा सब-कुछ तेरा है। माँग, क्या माँगती है !”

किन्तु राज ने गम्भीर होकर कहा—“सुनो भई, हम सब आठ हैं, अब तुम में से जो कोई अपनी मालिक आप नहीं—वह वचन न दे, मैं उसीसे लूँगी—जो सोलह आना अपनी मालिक है।

राधा सबसे नटखट, चपल और सुन्दरी थी। उसने राज के साथ ही एम. ए. फाइनल किया था। उसके पिता आगरा के एडवोकेट जनरल थे। उसने कहा—“देख राज, एक-एक से वसूल कर ! मैं आप अपनी मालिक हूँ, बोल क्या माँगती है, मैं वही दूँगी !”

“अपनी मालिक तू कैसे है ? बाबू जी ने तुझे क्या अंकुश में नहीं रखा ?”

“जब से माता जी का स्वर्गवास हुआ—बाबू जी मेरे साथ बिलकुल उदार व्यवहार करते हैं। वे मुझे बेटी नहीं बेठा समझते हैं।”

“अच्छा, यदि मैं तुझे ही अपने लिए माँगूँ ?”

“तो यह ले ! राधा कूदकर राज की गोद में बाँहे डालकर गले से लिपट गई। सबों ने चिल्लाकर कहा—“अरी कम्बख्त सारी जगह घेरकर बैठ गई। हमें भी तो जगह दे, हम क्या तुमसे पीछे हैं।”

“बहनो, राधा ने तुम सबसे बाजी मार ली। परन्तु राधा, तू फिर बोल !”

“तुझे जो कहना है, कह !”

“अगर तूने मेरी बात टाली तो।”

“तो जिन्दा इस कमरे से नहीं जाऊँगी।”

“सखियो, तुम सब गवाह हो !”

“सब गवाह हैं ।”

बात समझ में नहीं आ रही थी, कुछ विनोद और कुछ गम्भीरतापूर्वक यह सब हो रहा था । राज ने कहा—

“अच्छा राधा, एक बात बता, तूने अभी तक किसी को प्यार किया है या नहीं ।”

“किया तो है !”

राज की आँखों की ज्योति बुझ गई । उसने पूछा—“किसको ।”

“बाबू जी को ।”

राज खुश हो गई । उसने कहा—“और ?”

“पहले भगवान् को प्यार किया था, लेकिन जब माता जी बीमार हुईं और मैंने भगवान् से रात-दिन प्रार्थना की कि मेरी माता जी को अच्छा कर दे, पर उसने एक न सुनी, माता जी का स्वर्गवास हो गया । तभी से मैं भगवान् से रूठ गई हूँ । अब किसी से प्यार-वार नहीं करती ।”

सब सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ी । कुमुद ने कहा—“अरी डायन, भगवान् की बात कौन पूछता है यह कह कि इन्सान को भी प्यार किया है !”

“किया है,” वह चिड़िया की भाँति फुदककर राज की गोद से निकल पड़ी—और प्रत्येक सहेली को चूम-चूमकर “तुमको, तुमको, तुमको” कहती हुई फिर राज की गोद में जा बैठी । और बार-बार उसे चूमकर कहा—“सबसे अधिक तुमको !”

राज की आँखों से आँसू वह निकले । उसने कहा—“सखियो सुनो ! तुम जानती हो यह विवाह अचानक उठ खड़ा हुआ, और इसमें कुछ उलट-फेर भी हुए ।”

“हम लोग हैरान हैं कि तुम्हें यह क्या सूझी, ब्याह तो ब्रजराज से हो रहा था, तू ठाकुर साहब पर कैसे रीझ गई ।”

राज ने कहा—“सखियो, हम लोग मूर्खा नहीं, सब सुशिक्षिता हैं, हमें जानना चाहिए कि जीवन का सबसे निरापद मार्ग कर्तव्य-पथ है ।”

“निस्संदेह ऐसा है ।”

“कर्तव्य-पथ निरापद और प्रतिष्ठित तो है पर सुगम और सुखकर नहीं।”

“राम, सीता और युधिष्ठिर के उदाहरण हमारे सम्मुख है।”

“सखियों उसी कर्तव्य-पथ पर चलकर मुझे ब्रज का विसर्जन करना पड़ा, सबसे ही मैंने मन की वेदना छिड़ाई है, अब तुमसे नहीं छिपाऊँगी।”

“तो प्यारी राज, तुमने यह भारी आत्म-बलि दी है, हम तुम्हारा अभि-नन्दन करती हैं और हम तुम्हारे साथ हैं।”

“सखियों, तुमने सुना है, महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने प्रेम-सम्प्रदाय में रदास आदि अन्य कवियों को लेकर ‘अष्टछाप’ का संगठन किया था। हम आठों सखियाँ ‘प्रेम और कर्तव्य’ को अपनाकर ‘अष्ट मङ्गल’ की स्थापना करें तो कैसा ? अपने जीवन में हमारा ध्येय ‘प्रेम और कर्तव्य’ रहेगा। और इसके लिए हम बड़ा-से-बड़ा त्याग हँसकर करेंगी तथा जहाँ भी रहें परस्पर सम्बन्धित रहेंगी।”

“हम प्रतिज्ञा करती हैं, आज से हमारा सांकेतिक नाम ‘अष्टमङ्गल’ हुआ। हम ‘प्रेम और कर्तव्य’ का जीवन निवाहेंगी।”

“परन्तु यह आसान नहीं है सखियों, हमें अधिकारों के विरोध में भारी संघर्ष करने पड़ेंगे।”

“प्यारी सखी, हमने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। हमें न दफतरो में नौकरी करनी है, न कोई दूसरे ही दायित्व हमारे ऊपर है।”

“हम केवल यह प्रतिज्ञा करें कि हम अपने आठ घरों को ‘प्रेम और कर्तव्य’ के आदर्शों पर चलायेंगी।”

“हम प्रतिज्ञा करती हैं। हम प्राण देकर भी इस प्रतिज्ञा का निवाह करेंगी।”

“प्यारी सखियों ! हमारा दृष्टान्त संसार की स्त्रियों के लिए आदर्श होगा।”

“अवश्य होगा।”

“अच्छा तो अब मैं सबसे पहले राधा से अपना प्राप्त वर माँगती हूँ।”

“जो था वह दे चुकी, अब मेरे पास कुछ नहीं है” राधा ने कृत्रिम क्रोध से कहा।

“प्यारी, जो तू मुझे दे चुकी है वह क्या मेरा हो चुका ? मैं उसे जी चाहे जिसे दे दूँ।”

“तुम उसे भाड़ में भोंक दो, मेरी बला से,” राधा ने राज के गाल पर चिकोटी काटी और उसके गले से लिपट गई।

राज ने उसे छाती से लगा लिया। उसने आँसू बहाते हुए कर्पिते कण्ठ से कहा—“सखी, तू मेरी सबसे प्यारी चीज को सँभाल !”

राधा ने राज की आँखों-मे-आँखें डालकर कहा—“क्या ?”

“ब्रज को मैं तुझे देना चाहती हूँ। राधा, क्या तू इतना बलिदान कर सकती है ?”

“क्या तू हँसी कर रही है राज ?”

“नहीं प्यारी !”

“तेरा अभिप्राय क्या है ?” वह सीधी जाकर हटकर बैठ गई।

“उन्होंने मेरे लिए बड़े-से-बड़ा त्याग किया है। मेरे ही कहने से मुझे ठाकुर साहब के लिए छोड़ दिया, उनके पिता ने भी उन्हें त्याग दिया। ब्याह की सब तैयारियाँ हो गई थीं, देखा तूने वह सब ब्याह का सामान, जो ब्रज यहाँ लाकर रख गए हैं ! और ब्याह मे सबसे अधिक परिश्रम और उत्साह से उन्होंने ही काम किया है।”

“उनके पिता ने उन्हें क्यों त्याग दिया ?”

“जब उन्होंने पिता से कहा कि मैंने यह विवाह करना अस्वीकार कर दिया है और इसका यह कारण बताया कि वे किसी दूसरी लड़की से प्यार करते हैं तो पिता जी ने अपमान, शोक और क्रोध में आकर उन्हें त्याग दिया। सखी, अब मैं ब्रज को यों निरीह छोड़कर तो ठाकुर साहब के घर जाऊँगी नहीं।”

राधा कुछ देर चुपचाप बैठी रही, फिर उसने धीरे से कहा—“राज, क्या वे मुझे स्वीकार करेंगे ?”

राज ने कहा—“राधा, वे तुझे वह प्यार देंगे जिसकी तू कल्पना भी नहीं कर सकती।”

“सखी, वह स्त्री धन्य होगी जो उनकी जीवन-संगिनी होगी।”

“यदि वे तुम्हें ही जीवन-संगिनी बनायें ?”

“तो यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य होगा ।”

“क्या कहती हो प्यारी सखियों, राधा ब्रज की हुई न !”

“परन्तु उनसे भी तो पूछो !”

“नहीं, पूछूँगी नहीं, केवल आशा दूँगी” राज ने थोड़ा दर्प संजुँची गरदन करके कहा । फिर राधा से पूछा—“सखी, क्या तुम्हें बाबूजी की अनुमति लेनी पड़ेगी ।”

“अनुमति नहीं सखी, सहमति ।”

“तू समझती है, वे सहमति देंगे ।”

“देगे ।”

“तो मैं ब्रज को बुलाऊँ ?”

“तुम्हारी मर्जी ।”

इस पर राज ने बाहर आकर इधर-उधर देखा । ब्रजराज, नीचे के खण्ड में खड़े किसी आदमी से बातें कर रहे थे । उसने एक दासी से उन्हें बुला लाने को कहा और कमरे में आ बैठी—थोड़ी देर में ब्रज ने आकर पूछा—“मुझे बुलाया था क्या राज ?”

“जी हाँ !”

ब्रजराज ने कमरे में राज सखियों का जमघट देखा, तो थोड़ा भेंप गया । उसने नीची गरदन करके कहा—“कहो क्या बात है ?”

“आप यहाँ इस कुर्सी पर बैठ जाइए ।”

ब्रजराज कुर्सी पर बैठ गया । राज ने सखियों से कुछ साकेतिक बातचीत की । एक सखी बाहर चली गई । बातचीत बिलकुल बन्द थी । ब्रज का दम धुटने लगा । राधा अब भी राज की गोद में सिकुड़ी बैठी थी । उसकी सब चपलता गायब हो चुकी थी । सहेलियाँ सब चुप थीं । थोड़ी देर में उनकी एक सखी थाल में थोड़ी मिठाई, एक फूल-माला, और तिलक-रोली का सामान लेकर आ गई ।

ब्रज ने कहा—“मामला क्या है राज !”

राज ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा “आप खामोश रहिए !” फिर उसने कहा —“राधा यह माला है, इन्हें पहना दो !”

राधा ने काँपते हाथों माला ब्रजराज के गले में पहना दी। ब्रजराज ने कहा—“यह क्या तमाशा है ?”

“पहले तमाशा पूरा हो जाने दीजिए !” फिर राज ने उठकर रोली चावल से ब्रज का तिलक किया, सब सखियों ने भी किया। इसके बाद राज ने राधा से कहा—“अब तू इन्हें मिठाई खिला दे। राधा ने एक बड़ा-सा लड्डू उठाकर ब्रज के मुँह में ठूँस दिया ? सखियाँ मुस्कराने लगीं। ब्रज ने बहुत इधर-उधर किया। मगर लड्डू मुँह में ठूँस ही दिया गया। राज ने कहा—“आप भी राधा को खिलाइए, देखिए कंजुमी न कीजिए !”

“लेकिन यह हो क्या रहा है ?”

“जो कुछ भी हो रहा है वह समझ लीजिए पहले मेरा हुक्म तो बजा लाइए।” राज ने आज पहली बार ही अपना टोन बदला। ब्रजराज में एक रसगुल्ला उठाकर राधा के मुँह में रख दिया। सब सखियों ने आगे बढ़कर राधा का हाथ ब्रज के हाथ में दे दिया और दोनों के रूमालों में गाँठ बाँधकर दोनों रूमाल राधा की गोद में दे दिए। इसके बाद राज ने कहा—

“देखिये, अपनी सबसे प्यारी चीज मैंने आपको अर्पित की है, वचन दीजिए कि आप इसे हमेशा सिर पर रखकर नाचेंगे।”

“राज, तुमने तो मेरी सब सोचने-विचारने की शक्ति ही छीन ली है, आज तक मैं तुम्हारा शिष्य था आज से तुम हुईं। तुम मुझसे बहुत बड़ी हो राज, मैं तुम्हारे चरणों में झुकता हूँ।” उसने झुककर राज के पैर छू लिए। राधा ने भी उसका अनुसरण किया। राज चुप-चाप खड़ी आँसू बहाती रही।

ब्रज ने कहा—“मैंने कल देखा था राज, जब तुम्हारा विवाह हो रहा था तब फेरे के समय तीन फेरों तक तुम्हीं आगे थीं ! अब मैं सोचता हूँ कि जीवन के तीन भागों में स्त्री ही है। सो तुम राज, मुझे जीवन का राह दिखाना। जैसे सब पुरुष होते हैं, वैसे ही मैं भी ज्ञानान्ध पुरुष हूँ।”

“ज्ञानान्ध क्यों ?”

‘ज्ञान ने ही तो हमें अन्धा कर दिया है राज, जहाँ श्रद्धा, भावना और त्याग की आवश्यकता होती है वहाँ भी हम पुरुष ज्ञान के जाल में उलझ जाते हैं, किन्तु तुम लोग साहस कर बैठती हो हमसे आगे बढ़कर श्रद्धा-भावना और त्याग पर जूझ जाती हो। हम देखते ही रह जाते हैं।’

राज ने कहा—“इसमें आपका विचार ही ठीक है, अधिकार का संसार पुरुषों का है, उसमें नए-नए संघर्ष हैं, कटुताएँ हैं, अशान्ति है, वह अन्ध-स्वार्थ का संसार है। न मालूम कब से हम स्त्रियाँ अपने अधिकारों की भीख माँगती आई हैं।”

“राज, मैं सारे संसार के पुरुषों के प्रति विद्रोह करना चाहता हूँ।”

“हमने ‘अष्ट मङ्गल’ की स्थापना की है किन्तु हम विद्रोह करके नहीं, कर्तव्य-पथ पर चलकर लोगों को राह दिखाना चाहती हैं। प्रेम और कर्तव्य हमारा मूल मन्त्र है।”

“सो मुझे भी इसमें दीक्षित कर लो राज !”

“मैं तो ठाकुर साहब को ही दीक्षित करूँगी। राधा चाहे तो आपको कर सकती है। उसकी सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजिए।”

“अच्छा, परन्तु प्रार्थना-पत्र पर क्या उदारता से विचार होगा ?”

“यह तो प्रार्थी की नेकनीयती पर निर्भर है,” राधा ने धीरे से कहा।

“नेकनीयती ! यह क्या काफी होगा बहन ?” एक सहेली ने व्यंगपूर्ण मुस्कराहट होठों में भरकर कहा ?

“हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अभी पहले ही से कैसे कह दूँ, नेक-चलनी की जमानत मुचलके भी माँगे जा सकते हैं,” राधा ने खूब ठाठ से नकली गम्भीरता चेहरे पर लाकर कहा।

ब्रजराज ने एक बार राधा और एक बार राज के चेहरे की ओर देखकर आँखें नीची कर लीं ? उन्होंने धीमे स्वर में कहा—“जमानत शायद मैं न जुटा सकूँ।”

राज ने जैसे कहीं चोट खाई। उसने कहा—“जमानत तो मैं अभी इसी क्षण खड़ी-खड़ी देने को तैयार हूँ !”

“इतनी सस्ती न बनो बहन, इसी सीधेपन ने तो स्त्री जाति की मिट्टी पलीद कर रखी है। अभी तेल देखो, तेल की धार देखो। अभी प्रार्थना-पत्र तो आने दो, फिर नेकनोयती का सर्टिफिकेट...”

“खैर, तो मैं आशा लेकर अब जाऊँ ?”

“यो ही छूँ छे हाथ चले जायेंगे आप, राधा को आप क्या देते हैं इस समय ?” राज ने बड़ी-बड़ी पलके उठाकर कहा।

“इस वक्त तो मेरे पास कुछ है ही नहीं राज, लेकिन फिर कभी पूर्ति कर दूँगा ?”

“वाह, फिर की सनद नहीं, तुरत दान महाकल्याण, अभी दीजिए कुछ। पास नहीं है तो कर्ज लीजिए, दान लीजिए, चन्दा कीजिए। यहाँ महाजनों की तो कमी नहीं, आठ-आठ हैं।” कुमुद ने मुस्कराकर कहा।

ब्रज ने गम्भीरता से कहा—“कर्ज लेने को हैसियत चाहिए, चन्दा लेने को पोजीशन और प्रतिष्ठा। सो चन्दे और कर्जों की बात छोड़िए। दान जो कुछ भी मिल जाय।”

कुमुद ने हँसकर कहा—“यह मेरा नैकलेस,” उसने गले से नैकलेस उतारकर ब्रज के हाथ में देकर कहा—“लीजिए पहनाइए राधा को।” ब्रज ने काँपते हाथों से नैकलेस राधा के गले में पहना दिया।

“यह मेरे कड़े,” रुक्मिणी ने अपने जड़ाऊँ कड़े हँसते-हँसते ब्रज को दे दिए। ब्रज ने वे कड़े भी राधा के हाथों में पहना दिए।

“यह मेरी चूड़ियाँ,” मालती ने कहा।

“यह मेरे टॉप्स,” मृणाल बोल उठी।

“यह मेरी श्रृंगूठी,” ऊषा ने कहा।

“यह मेरी चेन,” शशिमणि ने कहा।

“यह मेरी रिस्टवाच,” पद्मा बोली।

एक-एक वस्तु लेकर ब्रज ने राधा के अंग पर सुशोभित कर दीं। राधा ने आँखें बन्द करके राज की गोद में मुँह छिपा लिया, अब राज ने जैसे नींद से जागकर जरा तेज स्वर में कहा—“और मेरा वह सम्पूर्ण दहेज रखियो !”

राधा ने चौंककर मुँह उठा कर राज की ओर देखा। वह कुछ कहे इस से प्रथम गंगा-यमुना की धार उसकी आँखों से बहने लगी। राधा ने कटी हुई पतंग की भाँति अपने को राज की गोद में डाल दिया। ब्रज लड़खड़ाते पैरों से कमरे से बाहर निकल आए।

५

ब्रज के चले आने पर सभी सखियाँ राज की ओर देखने लगीं। राज के निर्णय ने उन्हें मूक जड़ बना दिया। किन्तु राज ने झटपट आँसू पोंछ डाले। उसने बक्स से एक बढ़िया नई साड़ी निकालकर जबरदस्ती राधा को पहना दी। फिर उसने कहा—“चलो बहनो, अब नीचे चलकर राधा के दहेज को महेजकर रख दें।”

परन्तु राधा ने आँखों में आँसू भरकर कहा—“यह तुम क्या कर रही हो दीदी, यह कभी नहीं होने का। यह तो तुम्हारा बड़ा जुल्म है।”

“अभी से जुल्म से घबरा गई। जन्म भर भोगना होगा बहन !”

“लेकिन हाथ जोड़ती हूँ दीदी, यह नहीं हो सकता। तुम्हारा दहेज मैं न ले सकूँगी, बस यह साड़ी काफी है।”

“अरी पगली, तू अपना मोल ही नहीं जानती, तेरे लिए तो ब्रज भी माफ़ी है, लेकिन दम-में-दम है तो यह राज जब तक जियेगी तेरा मूल्य चुकाती ही रहेगी।”

“नहीं नहीं, वह मैं किसी हालत में स्वीकार न कर सकूँगी। किसी हालत में भी नहीं।” उसने राज के दोनों पैर पकड़ लिए।

उसे उठाकर छाती से लगाकर राज ने कहा—“बहन, मेरा दुःख अधिक न बढ़ा, मेरे घाव को भरने दे, मैं बड़ी दुखिया हूँ, जिसमें मुझे जरा सा सुख मिले वह मुझे कर लेने दे। मेरी हालत उस मरते हुए पशु की-सी है जिसकी गरदन पर छुरी पड़ चुकी, अब वह यदि थोड़े कम कष्ट की याचना करे तो उसे अस्वीकार करना निष्ठुरता होगा बहन, अब तो मेरी हालत तुझ पर प्रकट हो गई; अब कुछ मत बोल ! मैं जो चाहूँ-वही मुझे करने दे !”

“लेकिन मुझे तुम कुछ कहने ही न दोगी !”

“इस वक्त नहीं, इस वक्त तो मैं जो चाहूँगी करूँगी।” राज ने ऐसी वाणी से ये शब्द कह और ऐसी दृष्टि से राधा को देखा कि वह फिर बोल न सकी। एक निराश दृष्टि से उसने सखियों की ओर देखा और नीची आँखें कर लां धीरे-धीरे भर-भर करके उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

“तू सखी यही बैठ,” यह कहकर राज सब सखियों को लेकर नीचे चली आई। जहाँ दहेज का सामान सजाया हुआ था। राज के पिता और भाई से जो संभव था वह उन्होंने दिया था, मित्रों और सगे सम्बन्धियों की भेंट भी थी, फिर ब्रज के लिए हुए सामान ने उसे दुगुना कर दिया था। उसने देखा, पिता और दो-चार व्यक्ति सब सामग्री को सहेज-सहेजकर बक्सों में भर रहे हैं। राज ने कहा—“पिताजी, आप कष्ट न कीजिए, हम लोग सब रख रखा लेंगी।”

बृद्ध ठाकुर ने पुत्री की ओर एक बार देखा। फिर कहा—“अच्छा, परन्तु जरा जल्दी करना होगा। लारी वाला जल्दी कर रहा है। सब बक्स सँभालकर लारी में लदवा देना, सिर्फ जेवरों का बक्स गाड़ी में अपने साथ रख लेना।”

राज ने कहा—“पिताजी, यह सब सामान यहीं रहेगा, ठाकुर साहब के यहाँ नहीं जायगा।”

ठाकुर गजराज ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से पुत्री की ओर देखा और फिर कहा—“क्यों, यहाँ क्यों रहेगा ?”

“यह सब मैंने राधा को दे दिया।”

“राधा को ?” बृद्ध ठाकुर ने पुत्री की ओर आश्चर्य से देखकर प्रश्न किया। राज ने हँसकर कहा—“पिताजी, ब्रज का विवाह राधा से होना तय हुआ है, मैंने यह सब दहेज राधा को दे डाला है। आप नाराज मत हूजिये !”

पिता और पुत्री की वेदनापूर्ण दृष्टि परस्पर उलझ गई। उन्होंने सिर खुजाते-खुजाते कहा—“किन्तु ठाकुर साहब”

राज ने हँसकर कहा—“आप कुछ भी चिन्ता न करें, मैं उन्हें समझा दूँगी।”

“तो फिर जैसी तेरी इच्छा !”

गजराजसिंह बाहर जाने लगे तो लौटकर बोले—“राज अब देर क्या है ?”

“कुछ भी नहीं, मैं तैयार हूँ पिताजी, आप उनसे कहला दीजिए ।”

“अच्छा, कहकर गजराज जल्दी-जल्दी आखें पोंछते हुए चले गए ।”

६

“सचमुच जब मैंने सुना कि तुमने अपना सारा ही दहेज अपनी सहेली को दे दिया तो पहले तो मुझे विश्वास ही न हुआ । पर जब मुझे मालूम हुआ कि यह सच है तो मैं हैरान रह गया ।”

“आप शायद नाराज हो गए, आपको बुरा लगा ?”

“नहीं, खुशी हुई, कि तुम इस कदर दरियादिल हो ।”

“सुनकर तसल्ली हुई, किन्तु पूछा जाय तो दरियादिल तो आप हैं ।”

“यह कैसे ?”

“आप उस दहेज की ओर तो देखते हैं जिसकी कीमत न लाख, न पचास हजार, परन्तु उन सात लाख रुपयों की ओर नहीं देखना चाहते, जिन पर आपने एक मुभ-जैसी निकम्मी लड़की को लेकर एकदम पानी फेर दिया ।”

ठाकुर साहब ने जरा भेप जाने का अभिनय किया, परन्तु हँसकर कहा—
“वाह, यह भी कोई बात है, तुम्हारे मुकाबले सात लाख क्या हैसियत रखते हैं, तुम तो हीरा हो राज !”

“सात लाख का हीरा, अभी आप ऐसा कहते हैं, शायद शीघ्र ही आपको पछताना पड़े ।”

“किसलिए ?”

“बड़े-बड़े जौहरी चक्रमा खा जाते हैं । हीरे के दाम काँच ग्यरीद लेते हैं, फिर आप तो जौहरी नहीं, एक रईस हैं ।”

ठाकुर साहब जोर से हँस पड़े ! फिर उन्होंने सिगरेट-केस से एक सिगरेट निकाल कर उसे ठोकते हुए कहा—“हाँ, पिता जी शायद गड़बड़ी करें ?”

“किस सम्बन्ध में ?”

“यही दहेज के सम्बन्ध में ।”

“वे क्या गड़बड़ी करेंगे ?”

“उनका खत आया है, दहेज क्यों नहीं लाया गया। इस सम्बन्ध में मुझसे कैफियत तलब की है।”

“आपसे क्यों ? कैफियत तलब करना ही है तो वे मुझसे करेंगे दहेज तो मैंने ही सखी को दिया है, आपने नहीं।”

“फिर भी कुछ जवाब तो उन्हें देना ही होगा ?”

“जवाब देना होगा तो मैं दे लूंगी। हाँ, आप ही यदि जवाब तलब करना चाहते हैं तो बात दूसरी है।”

“नहीं, नहीं, मैं तो यह समझता हूँ जो तुमने कर दिया वह मैंने ही किया। आखिर अब हम तुम दो तो रहे नहीं। लेकिन यह कुछ खानदानी इज्जत का सवाल है और वहाँ गाँव-देहात में इन बातों का बड़ा खयाल रखा जाता है। लोग पूछते हैं, देखते हैं, ‘क्या दहेज आया, कितना आया’ ?”

“यह तो बड़ी अजीब सी बात है। दहेज से खानदानी इज्जत का क्या सम्बन्ध है ? लड़की का पिता विवाह के समय अपनी हैसियत के अनुसार जो उससे बन सकता है देता है, उसका सम्बन्ध लड़की से है। देखने वालों और पूछने वालों से तो नहीं।”

“फिर भी यह एक रिवाज पड़ गया है। तुम जानती हो—दहेज-तिलक ही की तो ब्याह-शादी में शोभा होती है।”

“यह आप क्या कह रहे हैं ? आप तो विदेश घूम आये हैं। उच्च अधिकारी हैं, फिर भी आप इन झूठी निराधार बातों पर ध्यान देते हैं ?”

ठाकुर साहब अब अपनी खीझ न छिपा सके। उन्होंने कहा—“इन बातों को झूठी और निराधार क्यों कहती हो ?”

“तो फिर आप ही कहिए इनमें सत्य क्या है और आधार क्या है।”

“सत्य यह है कि शादी-व्यवहार बराबर की हैसियत वालों में होते हैं बराबरी की हैसियत दिखाने का ही तिलक-दहेज लेन-देन होता है। उनका प्रदर्शन होता है।”

“सत्य यह नहीं है, सत्य यह है कि पिता की सन्तानों में से पुत्र घर में

उसी खानदान के सदस्य बने रहते हैं, इसलिए पिता की सम्पत्ति में से उन्हें हिस्सा मिलता है, परन्तु लड़की ब्याहकर दूसरे खानदान में चली जाती है, इसलिए संतान के अधिकार से उसका हिस्सा विवाह के समय दहेज के रूप में उसे दे दिया जाता है। उसे धूम-धाम से प्रदर्शित करना निराधार है और वह पिता का लड़की को दिया धन है, वही उसकी मालिक है सुसराल वालों का उससे कोई सरोकार नहीं है।”

“तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि दहेज पर सुसराल वालों का कोई हक ही नहीं।”

“नहीं है।”

“पर व्यवहार में तो ऐसा ही होता है, कि दहेज लड़की को नहीं मिलता। तुम्हारी राय में शायद यह ठीक नहीं।”

“जी हाँ, मेरी राय में यह एक निर्दय डाकाजनी है, और लड़कियों को चाहिए कि वे वीरता पूर्वक इसके विरुद्ध जो कुछ किया जा सके, करें।”

ठाकुर साहब ने दो-चार कश सिगरेट के लगाए, फिर मुस्कराकर कहा—
“लेकिन अब तो दहेज के खिलाफ बहुत आवाज उठाई जा रही है।”

“मैं तो इसका भी विरोध करती हूँ। एक संतान की हैसियत से पिता की सम्पत्ति में से लड़की का हिस्सा दहेज के रूप में मिलना चाहिए, और उस पर उसी का अधिकार होना चाहिए। अथवा पिता की सम्पत्ति में पुत्री का भी उतना ही हिस्सा रहना चाहिए जितना पुत्र का।”

“यह एक नया-निराला दृष्टिकोण है राज !”

“नहीं इन रीति-रस्मों का यही सच्चा अभिप्राय है जिसके आधार पर इन्हें प्रचलित किया गया था।”

“खैर, तो पिताजी को क्या लिखा जाय ?”

“यही लिख दीजिए, कि यह काम राज का है, वही आपको कैफियत देगी।”

“तो तुम ऐसे मामलों में पिताजी से मुँह-दर-मुँह बात करोगी ?”

“क्या हर्ज है, क्या वह मेरे पिताजी नहीं हैं ? क्या मैं अपने बाबूजी से बात नहीं करती।”

“परन्तु भगड़े-भंभट की बात करना क्या ठीक होगा ?”

“घर में भगड़े-भंभट भी होते हैं, गलतफहमियाँ भी होती हैं, प्यार भी होता है, गृहस्थ ही जो ठहरा। मैं तो बहुत बातों में बाबूजी से खूब भगड़ा करती हूँ। और उन्हें हार माननी पड़ती है।”

“लेकिन पिताजी जरा खूबे स्वभाव के आदमी हैं, मुझे भय है कि तुम उन्हें कहीं शुरू ही में नाराज न कर दो।”

“खूबे हो सकते हैं ! क्योंकि वे पुत्र के पिता हैं, पुत्री के नहीं। जब एक पुत्री उनके सामने जायगी, तब देखूँगी वे कैसे खूबे बने रह सकते हैं। बेटी के सामने भी पिता कही खूबा खूबा कड़ा बना रह सकता है ? मैं विश्वास नहीं कर सकती।”

एकाएक जैसे कोई बात याद करके और चौंकर टाकुर साहब ने कहा —
“हाँ, वह जेवर का बक्स कहाँ है, उसे साथ रखना।”

“वह तो उसी दहेज के साथ गया ?”

“इसका मतलब ?”

“मतलब यह कि वे सब जेवर वगैरह भी मैंने दहेज के साथ अपनी सहेली को दे दिए।”

“वगैरह क्या ?”

“जो, जो सामान — जेवर, कपड़ा, वगैरह-वगैरह आपने मुझे प्रदान किया था वही सब।”

“वह सब भी तुम वहीं छोड़ आई हो ?”

“सखी को दे आई।”

“यह तुम क्या कह रही हो राज, पिताजी इसे कभी बर्दाश्त न करेंगे।”

“पिताजी का मैंने क्या अपराध किया है ?”

“तुम तो घर में आने से पहले ही घर को लुटा आई। जो जेवर कपड़े यहाँ से गए थे उन्हें दूसरों को बाँटने का तुम्हें क्या अधिकार था।”

“क्या पिताजी के स्थान पर आप ही मुझमें जवाब तलाब कर रहे हैं ?”

“ऐसा ही समझ लो !”

“तो सुनिए — जो कुछ पिता ने दहेज में दिया वह पुत्री-धन है, और जो आपने विवाह समय पर दिया वह स्त्री-धन है। दोनों पर मेरा ही अबाध अधिकार है। मैं उसका जैसा भी चाहूँ उपयोग कर सकती हूँ।”

“तब तो तुम आज से इस घर की भी मालकिन हुईं, इस घर का भी सब स्याह-सफेद करने का तुम्हें अधिकार है।”

“वेशक, परन्तु केवल मैं घर की ही मालिक नहीं हूँ। आपके हृदय की भी हूँ।”

“मेरी नहीं”

“आपकी भी मालिक हूँ !”

“और मैं ? मैं शायद बिलकुल नाचीज हूँ।”

“नहीं, आप मेरे, मेरे हृदय के और मेरी प्रत्येक वस्तु के मालिक हैं।”

“तो तुम्हें दहेज व दूसरी चीजें दूसरे को देने से पहले मुझसे पूछना तो चाहिए था !”

“पूछने और सलाह करने की आवश्यकता वहीं होती है जहाँ शक-संदेह हो, परन्तु जो काम करना कर्तव्य हो जाता है, वहाँ इसकी आवश्यकता नहीं, एक साथी ने जो कर दिया दूसरे को उसका समर्थन करना ही चाहिए।”

“मुझे तुम्हारी बातें और तुम्हारे विचार ठीक नहीं प्रतीत होते राज, तुमने ठीक नहीं किया।” ठाकुर साहब अपना असन्तोष और गुस्सा न छिपाकर एक-दम उठ खड़े हुए।

“अभी मेरी बातों और विचारों पर आपने मनन नहीं किया उनके प्रत्येक पहलू को समझा भी नहीं, इसी से ऐसा कहते हैं। समझ लेंगे तो आपको राय बदलनी पड़ेगी।” परन्तु ठाकुर साहब ने जवाब नहीं दिया। वे फकाफक सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए वहाँ से चले गए।

इसी समय राज ने अपने पिता को एक पत्र लिखा। पत्र में उसने लिखा — “ठाकुर साहब या उनके पिता दहेज के सम्बन्ध में संभव है कुछ भ्रम उत्पन्न करें, यदि ऐसा हो तो आप बिना मेरी सूचना पाए उन्हें उत्तर न दें, न इस सम्बन्ध में कुछ करें; आप यह न भूलें कि वह पराई थाती अमानतन आपके पास रखी है, भाई साहब को भी यह पत्र पढ़ा दीजिए।

पत्र डाक में भेजकर राज ने स्नान किया, वस्त्र बदले। और अपनी नई गृहस्थी का निरीक्षण करने लगी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़ी है, जहाँ शीघ्र गोला-बारी होने वाली है।

७

राधा की एक मौसी जी हैं, मौसी जी खूब गोरी-चिट्ठी, गोल-मटोल, और मोटी-ताजी हैं। कपड़े-लत्ते और शरीर की सफाई की ओर उनका बहुत ध्यान रहता है। पान खाने का उन्हें बहुत शौक है। वे हरदम घर के काम-काज में व्यस्त रहती हैं। परन्तु तनिक भी फुरसत पाते ही चाभी का भन्वा साड़ी के छो मे बाँधकर वे खटाखट सरीता चलाने लगती हैं। सरीते के साथ ही उसकी जवान और आँखें भी खूब काम करती हैं। घर में कहाँ क्या अव्यवस्था है आँखें यह देखती रहती हैं और जवान उनकी नौकरों और दासियों को आदेश देती रहती हैं। उम्र उनकी चालीस को पार कर रही है, बालों की एकाध लट चाँदी के तार के समान काले बालों में अग्राद स्वरूप दीख पड़ती है। राधा उन चाँदी के तारों की दुश्मन है। अग्रकाश पाते ही वह मौसी का सिर गोद में रखकर एक-एक सफेद बाल नोच डालती है। इससे राधा पर मौसी बहुत प्रसन्न रहती हैं, हँस-हँसकर उससे बातें करती हैं, बातचीत का प्रसंग और विषय बहुधा राधा के विवाह का होता है। विषयान्तर होने पर दुष्टा राधा मौसी को असल विषय पर ही बात करने की याद दिला देती है। मौसीजी खूब बड़े-बड़े तालों का चश्मा लगाती हैं। चश्मे के भीतर आँखों में मुरमा लगाती हैं। फिर भी मौसी की आँखें जरा छोटी और गोल-गोल हैं। नाक की नोक जरा मोटी है। बैठकर उठने में मौसीजी को जरा असुविधा होती है—पर मौसीजी आलस्य नहीं करतीं। पान खाने पर भी वे अपने दाँत खूब साफ रखती हैं जब हँसती हैं तो इस बात का खयाल रखती हैं कि दाँतों की बहार हास्य में चार चाँद लगाय। वे हँसकर जब बड़े-बड़े तालों के भीतर से मुरमे से अँजी हुई गोल-गोल छोटी-छोटी आँखों को घुमाकर और पान से लाल रंगे होठों पर बत्तीसी की छटा दिखाकर मुस्कराकर जब गृहपति मिनहा साहब को मन्द-मन्द स्वर में जरा लजीले

भाव से साझोपाझ 'जीजा जी' कहकर सम्बोधन करती हैं। तब कौन कह सकता है, कि वह चालीस को पार कर चुकी हैं और गृहपति सिनहा साहव भोजन करके, कपड़े पहन कचहरी जाने से प्रथम दस्तूर के अनुसार पान के दो बीड़े लेने मौसी के पास आते तथा पान लेकर एकाध वाक्य बोलकर चले जाते हैं तब मौसी ही-मौसी उस घर में दीख पड़ती हैं।

मौसीजी का नाम अन्नपूर्णा देवी है। परन्तु घर के सब लोग उन्हें अन्ना मौसी कहते हैं। फिर भी इसमें अपवाद है। गृहपति सिनहा साहव उन्हें 'अन्न-पूर्णा' कहते हैं। राधा केवल 'मौसी' कहती है, और माधव केवल 'चाची' कहता है।

माधव मौसी के जेठ का लड़का है। इसी साल उसने सातवीं बार मैट्रिक की परीक्षा दी है। हर बार वह पास होते-होते रह जाता है। परन्तु इसमें उसका कोई दोष नहीं होता—दोष होता है परीक्षक का। वे या तो पक्षपात करते हैं या द्वेष भाव रखते हैं। परन्तु माधव की योग्यता बहुत है। राधा से वह हमेशा अंग्रेजी में बात करता है। मौसी की गलतियों को वह अंग्रेजी में समझाता है। नौकरों को भी अंग्रेजी ही में गाली देता है। अंग्रेजी लिवास घर में भी और घर से बाहर भी रखता है। हिन्दुस्तानी फिल्मों से उसे नफरत है वह अंग्रेजी फिल्म देखता है। अखबार भी अंग्रेजी पढ़ता है। सिगरेट भी अंग्रेजी पीता है। सिर्फ दाल-भात-रोटी और पान देसी खाता है। भारतीय वातावरण, सभ्यता, रहन-सहन उसे पसन्द नहीं है। भारतीय लड़कियों को वह गुड़िया कहता है, मौसी से अपने ब्याह की बातचीत वह बड़े उत्साह से करता है, पर भारतीय लड़की से ब्याह करके उसके साथ निर्वाह करना उसके लिए किस प्रकार असंभव है, इसे वह अंग्रेजी में कहकर उसका हिन्दी में अनुवाद करके बहुत बार मौसी को सम्झा चुका है। मौसी उसकी बात से सहमत है। पर उसका संशोधन यह है कि कोई इंग्लिशकट् हिन्दुस्तानी लड़की मिल जाय तो भी हर्ज नहीं है। राधा ऐसी ही लड़की है, मौसी ने बहुत बार संकेत किया है। और राधा उसके लिए फिट बैठ सकती है या नहीं—इस पर माधव निरन्तर विचार करता रहता है। परन्तु अभी उसने इसकी स्वीकृति नहीं दी है। प्रसंग चलने पर कहता है—“जरा और सोच

लूँ । अभी राधा की हरकतों में बहुत हिन्दुस्तानीपन है यों वह आकपक है ।” पर माधव दिन-पर-दिन अब राधा के सम्बन्ध में विचार करने लगा है उसका खयाल है कि केवल स्वीकृति-मात्र की देर है । राधा उसी की है । राधा उसकी इस नज़र को बहुत दिन से पहचान गई है । मौसी का दृष्टिकोण भी उससे छिपा नहीं रहा है, वह माधव को खूब सेंकती है । और अब तो जलाने ही लगी है । मौसी से भी उसने मनोरंजन का यहो विषय ठान रखा है ।

आप कल्पना कीजिए—उस मुख की—जब मौसी जी खा-पीकर दो बीड़े-पान मुँह में दवाकर मयनद के सहारे राधा की गोद में बैठकर अपने सिर के चाँदी के तार बिनवाती हुई, अपने मन में छिपी हुई—माधव के साथ राधा के ब्याह की वासना को राधा के ही मुँह से उद्गीत अभिलाषा के रूप में सुनती है तो आनन्द-विभोर हो जाती है । वह समझ लेती है अब तो केवल सिनहा साहव को सूचना-भर देने की कसर रह गई है ।

मौसी जी बाल-विधवा हैं । और जेठ का यह बेटा माँ-बाप दोनों से रहित है । मौसा ही ने पाल-पोसकर बड़ा किया है । अब से आठ वर्ष पूर्व जब राधा की माँ का देहान्त हुआ और सिनहा साहव ने उसी अवसर पर आई हुई अन्नपूर्णा को उसके घर वापिस नहीं जाने दिया—सारी घर-गिरस्ती और बेटी राधा उसे सौंपकर निश्चिन्त हो गए तब से यह माधव भी इसी घर के मालिकों में से एक हो गया । माधव कभी स्वप्न में भी यह विचार नहीं करता कि यह घर उसका नहीं है । सिनहा साहव की मोटर, मोटर-साइकिल, छतरी, बरसाती, बरसाती जूता, कपड़ा, लत्ता, जिसकी उसे आवश्यकता होती है वह अपने काम में ले लेता है, सिनहा साहव को इन सब बातों की ख़बर भी नहीं पड़ती । उनकी सब ज़रूरतें अन्नपूर्णा पूरी कर देती है । राधा भी उनका पूरा ध्यान रखती है । उनको अपने काम से ही फुरसत नहीं मिलती । रुपया-पैसा आमदनी जो आती है वे अन्नपूर्णा के हाथ पर रख देते हैं । इससे माधव को किसी काम में अड़चन नहीं उठानी पड़ती । किसी काम के करने की उसे ज़रूरत ही क्या है । अभी वह सिर्फ अट्ठाईस वर्ष का ही हुआ है । वह सोचता है, मैट्रिक की डिग्री मिल जाय तो कुछ काम की बात सोचे-विचारे ।

परन्तु कोई उसे यदि मैट्रिक के स्टेण्डर्ड पर ही परखता है तो वह नाराज हो उठता है। वह कहता है, पास होने ही से क्या—इंगलिश उसकी बहुत हाई है। उसने बहुत से वाक्य-के-वाक्य और कविताएँ बड़े-बड़े कवियों-शैली, बायरन, शेक्सपियर—की रट रखी हैं, मौके-बे-मौके वह उनसे काम लेता है। जब वह अपनी अटपटी अशुद्ध अंग्रेजी में मौके-बे-मौके इन रटे हुए वाक्यों तथा कविता-खण्डों का प्रयोग करता है तो राधा आँखें फाड़कर रोम-रोम में आश्चर्य और हैरानी का पुट भरकर—‘मार्वलस’ ‘वण्डरफुल’ कहकर तारीफ़ करती है तब माधव उसके उस अभिनन्दन को चुपचाप सिगरेट के धुएँ का बादल बनाता हुआ और सीटी बजाता हुआ ग्रहण करता है।

घर की मालिकिन और सर्वेसर्वा होने पर भी मौसी का एक कट्टर शत्रु इसी घर में है। वह है घर की पुरानी दाई अमरित। अमरित बहुत बुढ़िया है। वह इस घर की बहुत पुरानी दासी है। राधा को उसने गोद भी खिलाया है, दूध भी पिलाया है। जात की वह कहाँरिन है। रंग उसका स्याह है—दाँत मुँह में एक भी नहीं। बाल सत्र सन के समान सफेद हैं। राधा की माँ जब दुलहिन बनकर इस घर में आई थी तब इसी अमरित ने उसे वरदान समझकर घर में लिया था। और राधा की माँ ने उसी की गोद में ससार भी त्यागा।

राधा उसे बड़ी अम्मा कहती है। उसे घर का कोई काम नहीं करने देती। वह उस बुढ़िया को इतना प्यार करती है—कि बुढ़िया तंग आकर रो देती है, पर राधा खूब हँसती है। अमरित को दीखता बहुत कम है। पर वह मौसी की लूट-खसोट, मालिकी और माधव की नथनी फूटी आँख भी नहीं देख सकती, मालिक देवता हैं उन्हें तो कुछ पता ही नहीं है, घर में क्या हो रहा है, पर बड़ी अम्मा कमजोर आँख होने पर भी सब देखती हैं। राधा उसे अपने साथ बैठाकर खाना खिलाती है। सोने से पहले बड़ी अम्मा का बिछौना स्वयं एक बार जाकर ठीक कर आती है। कभी-कभी उसे गोद में लेकर भुलाती है। कभी गाना-गाकर सुनाती है, कभी नाच दिखाती है। कभी अंग्रेजी में माधव की नकल करती है। बुढ़िया पोपले मुँह से जब हँसती है तो राधा उसे एक बार खूब जोर से झकझोरकर भाग जाती है।

८

खूब बढ़िया कीमती साड़ी और जड़ाऊ गहनों से लदी हुई, माथे पर सिन्दूर-बिन्दु लगाए राधा जब तीसरे दिन—ठाकुर गजराजसिंह के घर से विदा होकर अपने घर पहुँची तो उसका यह दुलहिन का वेश देखकर मौसी भौंचक्की-सी रह गई। वह मुँह में पान की दबी गिलौरी से फूले हुए गालों को और भी फुलाकर—गोल-गोल आँखों को चश्मे के भीतर घुमा-फिराकर राधा को घूर-घूरकर देखने लगी। भर्त्ता-भौंति देख चुकने पर मौसी ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—“यह क्या स्वाग भरा है री ? पूरे तीन दिन लगा दिए, एक बार भी घर ध्यान का नहीं किया।”

राधा ने खूब गम्भीरता चेहरे पर लाकर, खूब घबराए हुए स्वर में कहा—“मैं ब्रोक से मर गई मौसी जी, कमबख्तों ने इतने गहने लाद दिए मेरे ऊपर, जरा सहारा देकर मुझे उस कुर्सी पर बैठा दो मौसी जी, हाय-हाय।”

मौसी ने राधा को कुर्सी पर बैठाते हुए और साड़ी को छूते हुए कहा—“किसकी साड़ी है यह, इतनी महान् है। कैसा इत्र लगा लाई है।”

“मेरी ही है।”

“दुनिया भर के इत्र मेरे ऊपर उड़ेल दिये मौसी जी, अब तुमसे मैं कहाँ तक अपनी बिपता कहूँ।”

“लेकिन हुआ क्या, कहती क्यों नहीं !”

“ब्याह कर दिया उन्होंने मेरा मौसी !”

“ब्याह ?” मौसी की आँखें कपाट पर चढ़ गईं।

“हाँ मौसी, अच्छा तुम्हारा तो ब्याह एक बार हो चुका है, ऐसा ही हुआ था मौसी ? ज़रा याद करके बताती जाओ ! इतने गहने, हाय-हाय, मैं मर गई।”

“लेकिन यह ब्याह कैसे हो गया ? न बात न चीत, ब्याह क्या हँसी-ठंडा है ?”

“नहीं तो मौसी जी, पूछो उन चुड़ैलों से, तुम्हारा भी ऐसा ही हुआ था

मौसी ?” मौसी बहुत ही धपले में पड़ गई। राधा ने अपना चेहरा ऐसा बना लिया मानो उस पर विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा हो। उस एम० ए० पास नटखट लड़की का यह अभिनय वह समझ ही न सकी, बोली — “ठहर, मैं अभी सिनहा साहब से तेरे सब चरित्र कहती हूँ। उन्होंने तुझे इतना मुँह लगा रखा है, बेटी की जात !” यह सिनहा साहब के दफ्तर की ओर चल दी। मौसी उन्हें सिर्फ मुँह पर सम्बोधन ही में ‘जीजा जी !’ कहती थी। आम बातचीत में वह गृहपति को सिनहा साहब ही कहती थी।

राधा को मालूम था कि पिता इस समय कचहरी गए हैं, आफिस में नहीं हैं, पर उसने अति कातर वाणी से पुकारकर कहा—“नहीं मौसी जी, बाबू जी से मत कहना, नहीं तो जीती नहीं छोड़ेंगे !”

“तो बताती क्यों नहीं क्या हुआ ?”

“कहती तो हूँ ब्याह हो गया।”

“किसका ब्याह हो गया ?”

“मेरा, और किसका !”

“किससे ?”

“एक ही था कोई।”

“कौन था नालायक !”

“नाम तो नोट नहीं किया मौसी, हाथ अब क्या होगा ?”

“ब्याह किया किसने ?”

“उन्हीं चुड़ैलो ने, आठों थी।”

“कौन ?”

राधा ने आठों सखियों के नाम उँगली की धोर पर गिने। फिर मौसी के गले में बाँह डालकर कहा—“मेरी अच्छी मौसी, बता दो तुम्हारा ब्याह भी ऐसा ही हुआ था ?”

“हुआ था तेरा सिर, पता नहीं क्या करनी-न-करनी कर आई है। कहती हूँ लड़की को काबू में रखना चाहिए। बे-नाथ के बैल की तरह फिरती है।”

“उन्होंने काबू में ही तो कर लिया मौसी ! मैंने बहुत मना किया—मानी ही नहीं ।”

मौसी बड़ी देर तक खड़ी कुछ सोचती रही । राधा ने अनुनय के स्वर में कहा—“हाथ जोड़ती हूँ मौसी, काबू जी से मत कहना !”

“न जाने क्या कर आई है उनसे न कहने से कैसे होगा, यह बात क्या छिपी रहेगी ।”

“अच्छा मौसी बताओ तो—ब्याह क्या इसी तरह होता है ?”

“खाक होता है, ब्याह में बारात आती है, बाजा बजता है ।”

“हाँ हाँ, बारात आई थी, बाजा बजा था ।”

“दूल्हा, बाराती-घराती बहुत आदमी होते हैं ।”

“सब थे मौसी !”

“अरी चुड़ैल, ब्याह ठाकुर साहब की बेटी का था कि तेरा ?”

“ठाकुर साहब की बेटी का ।”

“फिर तेरा ब्याह कैसे हो गया ?”

राधा ने रोनी सूरत बनाकर कहा—“यह मैं क्या जानूँ ?” फिर कुछ ठहरकर जिज्ञासा भरे स्वर में कहा —“ऐसा भी कभी हो जाता है क्या मौसी जी ! तुम्हारा तो ब्याह हो चुका है—तुम तो सब जानती हो ?”

परन्तु मौसी एक बारगी ही नाराज होकर एक बार खूब अच्छी तरह गोल-गोल आँखें घुमाकर और गाल फुलाकर वहाँ से चल दी । इस नटखट लड़की से वह पार न पा सकी ।

मौसी के जाते ही राधा खिलखिलाकर हँस पड़ी । हँसते-हँसते वह पलंग पर लेट गई उसने हाथ बढ़ाकर रेडियो का स्विच खोल दिया, संगीत की स्वर-लहरी से वातावरण तरंगित हो गया । राधा अब सब घटना पर विचार करने लगी । अब वह सोचने लगी—‘सचमुच यह तो सब-कुछ अद्भुत हो गया । काबू जी सुनकर न जाने क्या कहेंगे ।’

किन्तु ब्रज को पाकर उसके शरीर में रक्त की प्रत्येक बूँद नाच रही थी ।

उसके लिए यह कल्पनातीत बात थी। वास्तविक बात तो यह थी कि वह ब्रज-राज को हृदय से प्यार करती थी। पर यह उसका प्यार अत्यन्त प्राचीन था, वह जितनी नटखट, चपल और हँसोड़ स्वभाव की थी, उतनी ही मर्म की बात को छिपाने की सामर्थ्य भी रखती थी। ब्रजराज और राज दोनों परस्पर न केवल एक दूसरे से प्रगाढ़ प्रेम रखते हैं अपितु उनका विवाह भी होने वाला है, यह वह जानती थी। अतः उसने अपने अन्तस्तल में इस प्यार को ऐसा छिपाया था कि उसका किसी सहेली को भी पता न था। आँखों की प्यास और तड़पती हुई साँस वह अपने एकान्त कमरे में ही व्यक्त करती थी। एक असर एक शह की बात तो क्या—इस सम्बन्ध में उसने तनिक सा आभास भी इस प्यार का किसी पर व्यक्त नहीं किया था। ब्रज से उसकी बहुधा भेंट होती थी, बातचीत भी होती थी पर उसने कभी भी ब्रज पर प्यार का यह भेद प्रकट न होने दिया। ब्रज का चरित्र और निष्ठा तो उसे इधर-उधर कहीं देखने ही न देती थी। अब जो यों अयाचित और अतर्कित रीति से वह ब्रज की हो गई, सो उसकी अन्त-रात्मा का आनन्द उसके शरीर में से फूट चला। सहेलियों पर उसने आत्म संतोष प्रकट कर दिया था। मौसी को तंग करने में उसे सदा ही मजा आता था। फिर ऐसा असाधारण प्रसंग वह छोड़ती कैसे? मौसी वास्तव में इस गहरे मज़ाक के तथ्य को समझने में असमर्थ थी। यह ब्याह हो कैसे गया, यह वह समझ नहीं पाई, ब्याह इस प्रकार हो सकता है, इस पर उसे विश्वास नहीं हुआ। ब्याह तो उसका माधव से होना है। वही उसके लिए उपयुक्त पात्र है इस पर उसने खूब विचार कर लिया था। यदि सिनहा साहब राधा का ब्याह कहीं अन्यत्र करना चाहेंगे तो वह बड़े-बड़े जोड़-तोड़ लगायगी, बड़ी-बड़ी बाधाएँ खड़ी करेगी इन सब बातों पर तो मौसी बहुत सोच चुकी थी। पर लड़की एक दिन अपना ब्याह चुपचाप कर आयगी और इस प्रकार उसे सूचना देगी, यह उसने कल्पना भी नहीं की थी। अब मौसी जो यहाँ से गुस्सा करके अपनी कोठरी में गई और बिछौने पर लेटकर सब बातों पर विचार कर गई, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि यह सब झूठ है। सबने मिलकर मुझे खिन्नाने को यह झूठी बात गढ़ी है। उसी समय राधा के कमरे से रेडियो के संगीत की

आवाज सुनकर उसे विश्वास हो गया। सब नाटक था, नाटक ! मुझे खिझाने के लिए। मौसी के गोल-गोल मुँह पर हास्य की रेखाएँ फैल गईं। उन्होंने दो बीड़े पान मुँह में ठूँसते हुए आप-ही-आप हँसकर कहा—‘चुड़ैल कहीं की !’ और वह पलंग पर उटंग गई।

राधा बड़ी देर तक रेडियो का संगीत सुनती रही। वास्तव में वह अपने विचारों में ऐसी डूबी हुई थी कि उसे इसका खयाल ही न रहा कि रेडियो में क्या हो रहा है। संगीत की ध्वनि उसके कानों में अवश्य आ रही थी—परन्तु वह गहरे विचार-सागर में डूबी हुई थी, वास्तव में जो-कुछ हो गया है, उस पर विचार करने का तो अवसर उसे अभी मिला था। पर एकाएक उसे बूढ़ी धाय की याद आ गई। वह रेडियो को बन्द करना ही भूल गई और दौड़ती हुई बूढ़ी की कोठरी में पहुँची। राधा बूढ़ी से लिपटकर बोली—“बड़ी अम्मा, मेरी यह साड़ी देखो ?”

बूढ़ी अपनी आँखों की धुन्ध पालुकर साड़ी को देखने लगी। देखने की कमी हाथ से छूकर उसने पूरी की। अच्छी तरह साड़ी पर हाथ फेरकर कहा—“बहुत बढ़िया है बिटिया, कहाँ पाई ?”

“यह नहीं बताऊँगी बड़ी अम्मा, लेकिन यह भी तो देखो। और उसने अंग पर से उतार-उतारकर सब आभूषण बूढ़ी दादी की गोद में फेंकने प्रारम्भ कर दिए। उन आभूषणों को देखकर, टटोलकर, बूढ़ी ने बारम्बार राधा के शरीर पर हाथ फेरकर कहा—“बहुत अच्छे गहने हैं। कहाँ से मिले बेटी-बता !”

“यह नहीं बताऊँगी, नहीं बताऊँगी” कहकर राधा ने एक बार बूढ़ी को अच्छी तरह अंग में भरकर भँभोड़ डाला फिर कहा—“बड़ी अम्मा, एक और चीज देखोगी।”

“दिखा क्या है ?”

“फिर दिखाऊँगी !” कहकर वह भाग गई। सारे गहने बूढ़ी दासी की गोद में पड़े रह गए।

कचहरी से लौटते ही मौसी ने सिनहा साहब से मुलाकात की । राधा की जैसी उचित समझी रिपोर्ट की । व्यग वाण भी चलाये । सिनहा साहब ने सुनकर कपड़े बदलते हुए कहा—“अच्छा राधा को मेरे पास भेज दो अन्नपूर्णा, वह तुम्हें बहुत तंग करती है, मैं उसकी तम्बीह करूँगा ।”

राधा कमरा भीतर से बन्द करके गहरी नींद सो रही थी । एक बार मौसी ने जाकर झाँककर देखा । फिर दासी को भेज दिया । दासी ने राधा को जगाकर कहा—“बड़े बाबू बुला रहे हैं !”

खूब अच्छी तरह सो लेने से राधा की तबीयत ताजा हो गई थी, अभी तक वही साड़ी उसके अंग पर थी । दासी की ओर देखकर उसने कहा—“बाबू जी, कचहरी से आ गए !”

“अभी आए हैं ।”

“उन्होंने क्या तुम्हें मेरे पास भेजा है ।”

“जी नहीं, अभी मौसी ने कहा था । वे भी आई थीं, परन्तु आप सो रही थी ।”

“क्या मौसी ने बाबू जी से कुछ बात की थी ।”

“वे गई तो थीं बिटिया, बात की या नहीं, यह नहीं कह सकती ।”

“अच्छा तो तू बाबू जी के लिए चाय तैयार कर, मैं अभी आती हूँ ।”

दासी चली गई । और राधा ने साड़ी बदलकर हाथ-मुँह धोया । फिर ह कुछ सोचती हुई धीरे-धीरे पिता के पास गई ।

सिनहा साहब आराम-कुर्सी पर आराम से लेटे अखबार पढ़ रहे थे । राधा का आना उन्होंने नहीं जाना । राधा चुपचाप जाकर पिता के पीछे खड़ी हो गई । उसने धीरे से उनके कंधे पर हाथ रखा । पुत्री के स्पर्श को पहचानकर पिता ने हाथ का अखबार फेंककर राधा के हाथ पर अपना हाथ रखकर स्नेह से मुस्करा कर उसकी ओर देखा ।

राधा झुककर पिता के चरणों में बैठकर जूते खोलती हुई बोली—“जूते

नहीं उतारे पिता जी ?”

“अभी-अभी तो मैं आया हूँ। आज गर्मी बड़ी तेज है। वह पंखा खोल जरा !”

राधा ने जूता उतारकर स्लीपर पिता के पैरों में डाल दिए। फिर पंखा खोलकर कहा—“आपने बुलाया था क्या बाबू जी ?”

“क्या मैंने ?” फिर कुछ याद आने पर कहा—“हाँ, हाँ, तू मौसी को बहुत तंग करती है, क्यों ?” वे हँसने लगे।

राधा भी लजाकर हँसने लगी। पिता ने खींचकर उसे अपने पास बैठाया। वे उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। राधा ने एकाएक जैसे याद करके कहा—“आपके लिए चाय ला दूँ बाबू जी !”

“ले आ बेटी !” वे फिर अस्ववार ले बैठे।

राधा चली गई। थोड़ी देर में वह चाय ले आई।

पिता को चाय अपने हाथ से बनाकर और पिलाकर राधा चाय की ट्रे लेकर जब चलने लगी तो तनिक रुककर उसने पूछा—“और कुछ काम है बाबू जी !”

“नहीं बेटी !” वे अस्ववार पढ़ने लगे और राधा चली गई।

अपने कमरे में जाकर राधा ने अपने लिए एक प्याला चाय बनाई। सोफे पर अलस भाव से उसने अपना अंग डाल दिया। चाय की एक चुस्की लेकर वह एक अंग्रेजी मासिक के चित्रों को उलट-पलटकर देखने लगी। इसी समय उसे भान हुआ, कोई कमरे में आया है। गरदन घुमाकर देखा तो ब्रजराज है। वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। चाय का प्याला उसके हाथ से छूटते-छूटते बचा। उसका अंग-प्रत्यंग काँपने लगा। स्वागत का एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला। उसकी आँखें भी पृथ्वी पर झुकी रहीं।

“मैंने आकर तुम्हें अमुविधा में डाल दिया राधा !”

राधा ने मुस्कराकर मन्द स्वर से कहा—“नहीं, आप बैठिये !”

ब्रज सोफे पर ही बैठ गया। उसने राधा को भी बैठाया। राधा के बैठने पर कहा—“एक प्याला चाय मुझे भी दो राधा !”

राधा काँपती उँगलियों से चाय बनाने लगी। परन्तु ब्रज ने हाथ बढ़ाकर राधा का प्याला उठा लिया। राधा ने असंयत होकर कहा—“वह नहीं, यह प्याला बना रही हूँ।”

“उसे तुम पीना, मुझे यही प्याला दे दो!” ब्रज ने प्याले से होठ लगा दिए। राधा जड़ हो गई। वह हाथ का प्याला टेबुल पर रखकर बैठी रही।

ब्रज ने कहा—“पियो राधा, तुम भी पियो!” पर राधा ने प्याला नहीं छुआ।

“क्या नाराज हो गई?,” ब्रज ने हाथ का प्याला रखते हुए कहा।

“नहीं, पर आपने यह क्या किया। मेरा प्याला क्यों उठा लिया?”

“ग़लती हो गई।” ब्रज ने धीमे स्वर में कहा। राधा मुस्कराकर रह गई। ब्रज ने प्याला उठाकर उसके हाथ में दे दिया।

एकाएक राधा ने व्यस्त होकर उठते हुए कहा—“ज़रा उठरिये!”

“नही, अब और कुछ मँगाने की ज़रूरत नहीं, तुम बैठो!”

राधा बैठ गई! बड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे। अन्त में ब्रज ने मुँह खोला—“मैं बाबू जी को प्रणाम करने आया हूँ राधा!”

“मैं सोच ही रही थी।”

“क्या उनसे मुझे कुछ कहना भी होगा?”

“नहीं, जो कहना होगा मैं ही कहूँगी।”

“राधा, राज ने तुम पर यह एक कर्ह से बोझ लाद दिया है। नही कह सकता तुम इसे कैसे सहन करोगी? मेरी दशा तो यह है कि मैं राज को अधिक दुखी नहीं कर सकता। वह बहुत-बहुत दुखी है। परन्तु अभी तक मुझ पर एक राज का ही दुःख था, अब तुम्हारे लिए क्या करूँ समझ नहीं पाता।”

राधा की मूक जड़ वाणी विकसित होने लगी। उसने तिरछी नजर से ब्रज की ओर ताककर कहा—“क्या करना चाहते हैं आप?”

“जो कुछ तुम कहो। जिसमें तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त हो।”

“मेरा तो खयाल है आप अपना भार लादिये और मैं अपना। फुरसत होगी तो एक-दूसरे को सहारा भी दे-ले लिया जायगा।”

“मुझे अपने भार की चिन्ता नहीं राधा, चिन्ता मुझे तुम्हारी है !”

“आपने एक निकम्मी लड़की को गले बाँधा है तो चिन्ता का तो बात ही है ।”

“नहीं, नहीं, यह बात नहीं, मैं चाहता हूँ तुम प्रसन्न रहो !”

“अच्छी बात है और कुछ ?”

“मुझसे दिल खोलकर बात करो । मुझे बताओ कि मुझे क्या करना होगा ?”

“यह तो राज ही बता सकती है ।”

“राज अपना काम कर चुको ।”

“तो मैं भी कर चुकी ।”

“तुम क्या कर चुकी ?”

“अपना प्राप्तव्य पा चुकी ।” राधा ने कंपित कंठ से कहा ।

“यह तुम क्या कह रही हो, मैं बिलकुल नहीं समझता ?”

“न समझना ही अच्छा है ।”

“क्यों ?”

“आप शायद मुझे गिरी हुई लड़की समझें, दीठ समझें ।”

“राधा, तुम नहीं जानती हो, मैं तुम्हें क्या समझता रहा हूँ ? मैंने राज से भी बहुत बार चर्चा की है ।”

“किस विषय में ?”

“तुम्हारे भावी जीवन के सुख-दुःख के विषय में ।”

“उससे आपको क्या दिलचस्पी थी ?”

“मानता हूँ, वह मेरी दुष्टता थी । पर तुमसे तो अब कहना ही पड़ा कि मैंने राज से भी यह बात छिपाई थी ।”

“कौन सी बात ?”

“तुम्हारे प्रति जो मेरी आसक्ति थी । निस्संदेह मैं सम्पूर्णतया राज की सम्पत्ति था । पर तुम राधा ऐसी नहीं थी कि कोई तुम्हें देखे और तुम्हारी उपेक्षा करे, मैं तुम्हें प्यार करने का अधिकार रखता ही न था, क्योंकि मैं राज के साथ विश्वास-घात नहीं कर सकता था । वस मैं तुम्हारी पूजा करता था । अब से नहीं

दो साल से, जब से पहली बार तुम्हें मैंने राज के साथ देखा था। मेरे मन की एक यही लालसा थी कि तुम्हें मैं प्रम-नता और प्रतिष्ठा की वेदी पर देखूँ। यह बात बहुत बार मैंने राज से कही है।”

“आपकी आँखों से तो कभी यह बात नहीं मालूम हुई।”

“वही मेरी गूढ़ अन्तरात्मा की वासना थी, राधा।”

“हो सकता है, परन्तु आप पाप समझते हैं कि इस प्रकार मन का भेद छिपाने की विद्या आप ही जानते हैं।”

“क्या तुम्हें और भी कुछ कहना है राधा ?”

“मुझे जो कुछ कहना था कह चुकी।”

“फिर एक बार कह दो।”

“मैं अपना प्रातव्य पा चुकी।”

“यह तो स्पष्ट नहीं है राधा !”

“तुम नहीं समझ सकते—नहीं समझ सकते।” राधा एकवारगी ही ब्रज की गोद में गिरकर सिसकने लगी।

“ओफ ! समझ गया, राधारानी समझ गया, इस तुम्हारे ‘तुम’ सम्बोधन ने सब भेद खोल दिया। मेरा भ्रम-जाल दूर हो गया। तुम मेरी हो राधा, सारे विश्व में केवल तुम !”

“तुम मेरे हो ब्रज, सारे विश्व में केवल तुम !”

“तो चलो फिर बाबूजी को प्रणाम कर आइँ।”

“चलो, पर पहले बड़ी अम्मा के पास चलना होगा।”

“बड़ी अम्मा और ? मौसी जी को तो नहीं कहती हो।”

“न।”

“तब चलो ! राधा ने ब्रज को बुढ़िया दादी की कोठरी के आगे ले जाकर खड़ा कर दिया। फिर कहा—“देखो बड़ी अम्मा, किसे ले आई हूँ।”

बूढ़ी ने भौंहों पर हाथ रखकर ब्रज की ओर देखा—वह लाठी के सहारे उठकर खड़ी हो गई। फिर कहा—“कौन है बिटिया !”

“वही चीज।”

“कौन ?”

“दिखाने को कहा था न ?”

बुढ़िया और दो कदम आगे बढ़ आई। अपनी सहज बुद्धि से वह जितना जो समझ सकी उसी के आधार पर वह ब्रज के अग पर हाथ फेंगने और आशीर्वाद देने लगी।

राधा ने कहा—“बड़ी अम्मा है, पैर लुओ !”

ब्रजराज ने नीचे झुककर बुढ़िया के पैर लुए और चरण-धूलि मग्नक पर चढ़ाई। बुढ़िया ‘नहीं-नहीं’ करती रही अन्त में वह रो दी। वह कह रही थी—“इस बुढ़िया शूदर दासी के राजा बाबू से पैर लुआकर पाप चढ़ा दिया मेरे सिर बिटिया, यह क्या किया ?”

“राधा बूढ़ी के गले से लिपटकर प्यार करने लगी। ब्रजराज ने भर्राये कण्ठ से कहा—“बड़ी अम्मा, अपना आशीर्वाद दीजिए ! मेरी भी आप बड़ी अम्मा हैं।” बूढ़ी ने रोते-रोते न जाने कितने आशीर्वाद दे डाले।

अब राधा ब्रजराज को पिता के पास ले गई। वे लॉन में अकेले बैठे सांध्य समीर का आनन्द लेते हुए सुगन्धित सिगार पी रहे थे। राधा और ब्रज दोनों धीरे-धीरे उनके सामने जा खड़े हुए। ज ने आगे बढ़कर नीचे झुककर उनके चरण लुए और पीछे हटकर नीचा सिर करके खड़े हो गए। इसके बाद राधा ने भी पिता के पैर लुए।

सिनहा साहब पुत्री के इस व्यवहार पर चकित हुए। राधा पिता का इतना प्यार तथा प्रतिष्ठा करती थी, पर आज तक कभी उसने पैर नहीं लुए थे। और यह युवक कौन है ? वे कुर्सी छोड़कर ‘ऐःऐ’ करके उठ खड़े हुए। और प्रश्न-सूचक दृष्टि से पुत्री और ब्रज की ओर देखने लगे। परन्तु राधा वहाँ रुकी नहीं। धीरे से चल दी, उसके पीछे ही ज भी।

सिनहा साहब अवाक् खड़े रह गए।

६

श्री जे० पी० सिनहा का नाम आगरा-भर में प्रतिष्ठा और आदर से लिया जाता है। वे केवल एडवोकेट जनरल ही नहीं हैं आगरा बार-एसोसियेशन के प्रेसीडेंट और यूनिवर्सिटी की सीनेट के सदस्य भी हैं। वे जैसे कानून के पण्डित हैं उसी प्रकार निष्ठा और आचरण में आदर्श हैं। वे सौजन्य की मूर्ति हैं। उनकी वाग्धारा से बड़े-बड़े विचारपति राह पाते हैं, परन्तु अपने निज जीवन में वे मौन और मितभाषी हैं। पत्नी की मृत्यु के बाद—जिसे आठ वर्ष हुए—वे और भी शान्तप्रिय हो गए हैं। काम-काज के मुलाकातियों को छोड़कर बहुत कम वे मुलाकात करते हैं। मुलाकात में भी वे कहते नहीं—केवल सुनते हैं। घर में वे अन्नपूर्णा से कभी कभी एकाध गप उड़ा लेते हैं। पर जब मूढ़ में होते हैं तभी, इसी प्रकार राधा से भी। राधा को बहुत प्यार करते हैं, राधा उनकी इकलौती बेटी है, उनके हृदय का सारा ही प्यार राधा पर केन्द्रित है। नटखट और चंचल राधा पिता के सामने सीधी गाय बन जाती है। यत्न करने पर भी वह पिता के सामने गप्पें नहीं मार सकती।

आज के इस प्रसंग से वे कुछ अवाक् हो रहे। विचित्र सी बात थी। राधा एक अपरिचित युवक को लेकर आती है दोनों उनके पैर छूकर चरण-रज मस्तक से लगा बिना ही कुछ कहे-सुने चले जाते हैं। एक शब्द भी बोलते नहीं हैं। इसके बीच जो मौन संदेश है वह स्पष्ट है। फिर अम्मा मौसी ने भी उनसे कुछ कहा है। यह उन्हें याद आया। वे विचार में पड़ गए। पहले उन्होंने चाहा—राधा को बुलाकर पूछें—पर पीछे कुछ सोचकर उन्होंने अन्नपूर्णा को बुलाया अन्नपूर्णा के आने पर उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। निस्संदेह यह एक अनहोनी बात थी, उसका स्पष्ट यह अभिप्राय था कि वे कुछ गहरी बात किया चाहते हैं।

साधारण तौर पर प्रत्येक आगन्तुक की ओर वे शक्ति दृष्टि से देखते और उसकी बात को संदेह से सुनते हैं। परन्तु आज का उनका आचरण अद्भुत था।

अन्नपूर्णा के बैठने पर उन्होंने कहा—“तुम्हारी घर-गृहस्थी सब ठीक-ठाक

चल रही है अन्नपूर्णा, कुछ दिक्कत तो नहीं है !”

“ऐसी दिक्कत कुछ नहीं है, पर आप कुछ समझें भी तो !”

“क्या मुझसे कुछ गलती हो गई है अन्नपूर्णा !”

“गलती नहीं, लापरवाही ।”

“यह किसी हद तक ठीक है अन्नपूर्णा, पर जब यहाँ तुम हो तो फिर मैं सब ओर से बेफिक्र हूँ ।”

“लेकिन लड़की की आप कुछ चिन्ता करेंगे ही नहीं ।”

“तुम्हारा मतलब राधा की ब्याह-शादी से है न, अभी शाम को तुमने शायद ऐसी ही कुछ बात कही थी ।”

“आपने शायद मेरी बात सुनी ही नहीं ।”

“नहीं, नहीं, यह बात नहीं अन्नपूर्णा, मैंने कल ही अस्थाना साहब को एक खत लिखा है ।”

“कैसा खत लिखा है ?”

“इसी सिलसिले में, लड़का उनका अगली सर्दियों में इंग्लैंड से आ रहा है, बहुत योग्य लड़का है। अस्थाना साहब मेरे बाल-मित्र हैं। हम लोगों ने सब बातें ठीक कर ली हैं, लड़का जैसा योग्य है, वैसे ही अस्थाना साहब भी शरीफ आदमी हैं, तुम तो जानती ही हो, अभी उस दिन आकर तीन दिन रह-कर गए हैं। वस इन्हीं सर्दियों में राधा का ब्याह कर दो ।”

“लेकिन आपने मुझसे तो कभी कुछ कहा नहीं ।”

“बड़ी सख्त गलती हुई। मुझे कुछ खयाल ही न रहा। हा, राधा से भी मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह पाया हूँ—अब तुम्हीं उससे कह-सुन लेना !”

अन्नपूर्णा मन-ही-मन घुट रही थी। उसके मनसूयों पर पुत्री ने ही नहीं—पिता ने भी पानी फेर दिया था। पर वह खुलकर नहीं कह सकती थी, वह बौखला रही थी पिता ने पुत्री की शादी तै कर रखी थी और पुत्री शादी-ब्याह करके सब हिसाब-किताब देवाक कर चुकी थी। उसने स्वीकृत कर कहा—“आप तो यह कह रहे हैं—उधर हुआ क्या है, वह भी आपने सुना !”

सिनहा साहब एकदम सशंक हो उठे। उन्होंने पूछा—“तुम्हें कुछ नई बात

मालूम हुई है क्या ?”

“मैंने तो सुना है राधा ने ब्याह कर लिया है ।”

सिनहा साहब एकदम चौंक उठे । उन्होंने कहा — “ब्याह हो चुका है यह किसने कहा ?”

“राधा ने कहा ।”

“वह तो मजाक ही था न ? तुमने कहा था...” सिनहा साहब ने ध्यान से अन्नपूर्णा को देखा ।

“मजाक है या तमाशा है यह तो आप जानिए, वह तो बहुत से गहने-साड़ी लाई है, वह कहती है कि ब्याह हो चुका । भला ऐसा भी मजाक होता है ?”

“लेकिन मुझसे तो उसने कहा नहीं ।”

“आपने उससे पूछा था ?”

नहीं, पूछा तो नहीं, सिनहा साहब सिर खुजाने लगे । वे सोच रहे थे उस युवक की बात, चरण-स्पर्श की बात । उन्होंने कहा — “नहीं, तुम्हीं पूछ लो अन्न-पूर्णा, अच्छा मैं ही पूछ लूँगा ।” वे कुछ अस्त-व्यत से उठकर टहलने लगे ।

अन्नपूर्णा ने अवसर देखकर कहा — “आप क्या समझते हैं, यह क्या कुछ कम भयंकर बात है ?”

“कौन बात ?”

“जो मैंने सुनी है ।”

“हो सकता है वह मजाक किया हो राधा ने ।”

“अच्छा, मजाक ही सही, पर वह सच भी तो हो सकता है, मजाक ही है तो इस मजाक में संकेत भी कुछ है या नहीं यह तो सोचिए जीजा जी !”

इस जीजा जी शब्द को उसने शहद और मिसरी में घोलकर मुँह से निकाला । और गोल-गोल आँखों से सिनहा साहब की ओर घूरने लगी ।

सिनहा ने कहा — “तुम्हें संकेत का आभास कैसे मिला ?”

“कमाल करते हैं आप जीजा जी, लड़की मुँह फाड़कर तो ब्याह का तकाजा कर रही है, आप और क्या सुनना चाहते हैं । वह मजाक ही सही, पर आप मजाक को क्या सच ही किया चाहते हैं ।”

“नहीं नहीं, पर मैंने कहा न कि मैं कल ही अस्थाना साहब को खत लिख चुका हूँ, बे-खबर नहीं हूँ।”

“खत आप लिख चुके हैं, पर अस्थाना साहब तार में तो लड़के को विलायत से मँगा सकते नहीं वे यही कैसे जान सकते हैं कि साहबजादी ब्याह के लिए बेचैन हो रही है। जान पायँ तो भी सोचिए मन में क्या कहेंगे। अब लड़का आग्रहा सड़ियों में तब तक कुछ हो जाय तो ?”

“क्या हो जाय !” सिनहा साहब ने शंकित होकर कहा। उनके मस्तिष्क में वह युवक अब हजार मूर्ति बनकर घूमने लगा। फिर उन्होंने जरा धवराकर कहा—“तुम क्या कहती हो अन्नपूर्णा, क्या किया जाय !”

“मैं कहती हूँ, आपने मुझसे कभी अस्थाना साहब की चर्चा क्यों नहीं की !”

“यह तो गलती हो गई, पर अब क्या किया जाय।”

“क्या और लड़के हैं ही नहीं।”

“ऐं ! क्या तुम्हारी नज़र में कोई है”, सिनहा साहब ने कुछ चौंककर पूछा।

“एक अपना माधव ही है।”

“माधव ?” सिनहा साहब ने अचकचाकर जो अन्नपूर्णा की ओर नज़र उठाई तो उनका चश्मा ही नाक की नोक से खिसककर भूमि पर आ गिरा। उसे उठाकर वे कुर्ते से साफ करने लगे।

अन्नपूर्णा को पहली भोंक सँभालने का परा अवसर मिल गया। उसने कहा—“माधव में कसर ही क्या है, खानदान में, रूप-रंग में, लियाकत में सब तरह योग्य है, सिर्फ जरा पढ़ाई में पीछे है, पर पीछे क्या ? डिग्री नहीं मिली, अंग्रेजी बोलने में तो अंग्रेजों के भी कान काटता है। आपने उससे बातें की हैं अंग्रेजी में सिनहा साहब ?”

सिनहा साहब के सिर पर जैसे किसी ने हट दे मारी। वे कुर्सी पर लड़खड़ाते हुए बैठ गए, उन्होंने धीमे स्वर से कहा—“क्या तुमने कभी राधा से इस मामले में चर्चा की है, दोनों में कैसा रुख है यह देखा है।”

“देखा नहीं है तो क्या ! एक मिनट भी दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रह

सकते । दोनों में बड़ा प्रेम है । घंटों अंग्रेजी में हँस-हँसकर बातें करते हैं । जब बातें करते हैं तो राधा ही खूब हँसती है । मैं क्या इतना भी नहीं समझ सकती ।”

“लेकिन, तुमने कभी मुझसे तो कहा नहीं ।”

“अवकाश ही कहाँ मिला, पर अब कहना पड़ा । जीजा जी, यह तो इज्जत का सवाल है । ब्याह राधा का अब हो ही जाना चाहिए ।”

“मैं सोचूँगा अन्नपूर्णा, तब तक तुम भी सब बातों पर विचार करना ।”

अन्नपूर्णा सफलता के उत्साह से झूमती हुई घर में आकर काम-काज में जुट गई । उस दिन उसने एक-दो भोजन अपने हाथ से बनाकर सिनहा साहव को परोसे । दूसरे दिन छुट्टी थी, उस दिन प्रातःकाल चाय रखकर जब राधा जाने लगी । तब सिनहा साहव ने कहा—“तुम्हें इस समय कुछ फुरसत है बेटी !”

“हाँ बाबू जी !”

“तो जरा मेरे पास बैठ, और सब बातें बता, जो-जो बात तूने मौसी से कही है, और कल तू जो उस युवक को लाई थी, क्या नाम है उसका ?”

“ब्रज, ब्रजराज ।”

“हाँ-हाँ, ब्रजराज, नाम अच्छा है, अच्छा वह सुशील युवक कौन है, और तुम लोगों का इस प्रकार आकर मेरे पैर छूने का क्या अभिप्राय था ?”

राधा वहीं फर्श पर पिता के चरणों में बैठ गई । उसने चाय प्याली में डालकर पिता को प्याला दिया—और फिर धीरे-धीरे सारी बात अथ से इति तक पिता से कह डाली । कुछ भी नहीं छिपाया ।

“सुनकर सिनहा साहव गम्भीर हो गए । उन्होंने कुछ सोच-विचारकर कहा—“तू ज को पहले ही से जानती है ?”

“जानती हूँ ।”

“कहाँ देखा ?”

“राज के घर, वे राज को पढ़ाने आते थे, तब कभी-कभी मैं भी पढ़ती थी ।”

“क्या तू समझती है, वह एक सद्गुणी युवक है ।”

“पिताजी, वे देवता हैं, मनुष्य नहीं, फिर उनका त्याग कितना बड़ा है।”

“लेकिन यह सब-कुछ न होता—तो भी यदि तुम्हें अवसर मिलता तो तू उन्हें पसन्द करती ?”

राधा लजा गई। उसने पिता के घुटनों पर सिर टेक दिया।

सिनहा साहब ने कहा—“लज्जा मत कर बेटी, मेरी बातों का ठीक-ठीक जवाब दे। क्या तू उन्हें सच्चे मन से प्यार करती है ?”

“करती हूँ बाबूजी !”

“और वे ?”

“वे भी करते हैं।”

“बेटी तू अज्ञानी तो नहीं है, पर फिर भी कहीं गलती हो सकती है, जरा सोच ले !”

“गलती भी होती, गलत चीज भी होती, तो भी मुझे करनी पड़ती बाबूजी, परन्तु यहाँ तो ऐसी बात ही नहीं है उन्हें पाकर मैं अपने को भाग्यशालिनी समझती हूँ। फिर उसने कातर नेत्रों से पिता की ओर देखकर कहा—“बाबू जी, आप हमें आशीर्वाद देंगे ?”

“क्यों नहीं बेटी !” राधा ने पिता की गोद में सिर डाल दिया। और सिनहा साहब देर तक उसका सिर थपथपाते रहे। फिर उन्होंने कहा—“अच्छा बेटी, अब तुम आराम करो, चिन्ता न करो। जाओ !”

राधा ने अपनी गोद में पिता के चरण रखकर उन पर अपना सिर रखकर उन्हें आँसुओं से अभिषिक्त कर दिया—फिर वह धीरे-धीरे कमरे से निकल गई।

१०

बहुत सोच-विचार करने के बाद सिनहा साहब ने ब्रजराज से मिलने का निश्चय किया। ब्रज को वे न बुलाकर स्वयं ही सन्ध्या होते ही उसके होस्टल में चले गए। सिनहा साहब को देखकर ज प्रणाम करके चुपचाप खड़ा हो

गया। उसका मन शंका से भर रहा था। सिनहा साहब ने स्निग्ध स्वर से कहा—
“बच्चा, मैं तुम्हारी सहायता करने आया हूँ।”

ब्रज ने थोड़ा आश्चर्य होकर कहा—“आप बैठ जाइये बाबू जी!”

खूब स्वस्थ होकर बैठ जाने पर सहज शान्त स्वर में भिनहा साहब ने कहा—
“राधा ने मुझसे सब-कुछ कह दिया है, अब तुम कहो—तुम मुझसे क्या चाहते हो?”

“मुझे तो आपके आशीर्वाद से ही सब-कुछ मिल जायगा बाबूजी!”

“सो तो ठीक है। पर मैं कुछ बातें तुमसे भी जानना चाहता हूँ।”

“आप पूछिए!”

“पहली बात तो यह कि राधा तुम्हें पसन्द है न? वह तुम्हें सुखी कर सकेगी? माँ के न रहने से उसमें कुछ दोष आ गए हैं। मुझे भय है……”

परन्तु ब्रज ने उन्हें बीच में ही रोककर कहा—“बाबूजी, मैं भी बिना माँ का बच्चा हूँ और अब तो पिताजी ने भी मुझे त्याग दिया है। जब राज ने अपना अकस्मात् वह निर्णय मुझे सुनाया तो मैंने समझ लिया—आज ही मेरे जीवन की अंधेरी रात आ गई। राधा ने तो मुझे दूसरे जन्म की आशा दिखालाई है। मैं अपने को राधा के योग्य किसी हालत में नहीं समझता। दूसरा समय होता तो मैं तो राधा के सामने हाथ पसारने का साहस भी नहीं कर सकता था—वह तो राधा ने स्वयं ही मुझे सम्पन्न कर दिया—अब मैं तो केवल यही कह सकता हूँ कि जीवन में मैं उसके समान होने की चेष्टा करूँगा, और अपना जीवन तो मैं उसे समर्पित कर ही चुका।”

ब्रज की बात सुनकर सिनहा साहब ने अपनी आँखें पोंछ डाली। परन्तु फिर एकाएक कुछ चौकन्ने होकर कहा—“तुम्हारे पिता जी का क्या नाम है भैया, तुम किनके लड़के हो?”

“मेरे पिता जी तो एक साधारण देहाती किसान हैं बाबूजी!” पिताजी का नाम ठाकुर श्योदानसिंह है। यहाँ से डेढ़ घंटे के अन्तर पर हमारा गाँव है। वहीं वे रहते हैं। छोटा सा स्टेशन है।”

ब्रजराज का यह परिचय सुनकर सिनहा साहब जरा विचार में पड़ गए। कुछ देर मौन रहकर उन्होंने कहा—“इसमें एक बाधा है ब्रज, उसका क्या होगा।”

“कौन सी बाधा बाबूजी !”

“हम लोग कायस्थ हैं, तुम्हारे पिता शायद पुराने विचारों के ठाकुर हों, वे क्या यह सम्बन्ध पसंद करेंगे ?”

“शायद नहीं करेंगे।”

“तब तुम क्या पिता की बिना स्वीकृति के ही विवाह करने का साहस करोगे।”

“साहस तो जो करना था वह कर चुका। और इस सम्बन्ध में तो मुझे राह दिखाई है राधा ने।”

“यदि तुम्हारे पिता ने विरोध किया तो तुम क्या करोगे ?”

“राधा ही से पूछूँगा।”

सिनहा साहब हँस पड़े। ब्रज ने कहा—“पिताजी तो मुझे त्याग ही चुके हैं, इसलिए फिलहाल अब उनकी स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं है।”

“परन्तु तुम्हारे-जैसे सुशील युवक क्या पिता का जीते जी अविनय कर सकते हैं।”

“नहीं बाबूजी, अविनय नहीं। शिक्षा-संस्कृति-स्वभाव और जीवन का अभ्यास जो रहन-सहन और विचारों के दृष्टिकोण में अन्तर उत्पन्न कर देता है, उससे बहुधा पिता-पुत्र भाई-बन्धु में मतभेद खड़े हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कर्तव्य को ही अपनाना पड़ता है।”

“तुम यह कह रहे हो कि कर्तव्य माता-पिता से भी बड़ा है।”

“मैं यह कह रहा हूँ बाबूजी कि कर्तव्य परमेश्वर से भी बड़ा है।”

“तो तुमने राधा को केवल कर्तव्यवश ही ग्रहण किया, और कुछ तो बात नहीं।”

“कर्तव्य वश ही ग्रहण किया था बाबूजी, मुझे राधा को पसंद करने का अधिकार ही न था, वह मूर्खा, कर्कशा, कुरूपा जैसी भी होती स्वीकार करना ही

मेरा कर्तव्य था, परन्तु मेरे पूर्व जन्म के पुण्य से मुझे देव-दुर्लभ स्त्री-रत्न की प्राप्ति हो गई ?”

“पूर्व जन्म तुम मानते हो ?”

“नहीं मानता, पुण्य को भी नहीं मानता, भाग्य को भी नहीं मानता; परन्तु आखिर मैं किन शब्दों में उस आत्म-तुष्टि का वर्णन करूँ जो राधा को पाकर मुझे हुई है।”

“मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया बेटे, किन्तु मुझे ठाकुर साहब से एक बार मिलना होगा। किस गाड़ी से कैसे जाना होगा। गाँव स्टेशन से कितनी दूर है ?”

“आपका वहाँ जाना बेकार है बाबूजी, ऐसा ही है तो मैं ही चला जाऊँगा।”

“तुमसे काम पूरा नहीं होगा बेटे।”

“यदि आपका अपमान हुआ तो ?”

“घर में अपमान कैसा ? नहीं-नहीं मैं यह बात सोच भी नहीं सकता।”

“तो फिर मैं आपके साथ चलूँगा।”

“नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।”

सिनहा साहब जब उठकर चलने लगे तो उन्होंने सौ-सौ रुपये के पाँच नोट निकालकर ब्रज के हाथ में थमा दिए।

ब्रज ने कहा—“यह क्या बाबूजी !”

“यह बेटे, तुम्हारी पहली भेंट हैं।”

“मुझे क्षमा कीजिये बाबूजी, मैं स्वीकार नहीं कर सकता।”

“क्यों बेटे !”

“मैं केवल आपका आशीर्वाद ही स्वीकार करूँगा। रुपया-पैसा तो मैं सिर्फ़ वही छू सकता हूँ जो अपनी मेहनत-मजदूरी से पैदा करूँ।”

“किन्तु यह तो होता ही है ब्रज, इससे इन्कार न करो, मुझे दुःख होगा।”

“बाबूजी, आपको दुःख नहीं होना चाहिए, कन्या के पिता अपने को

हीन समझकर ही ऐसी भेंटें देते हैं। मैं तो आपको हीन नहीं समझता—बाबू जी समझता हूँ !”

“पिता क्या अपने पुत्र को कुछ देता नहीं।”

“क्यों नहीं ! आप विश्वास रखिये जब जिस वस्तु की आवश्यकता होगी आपसे उसी भाँति माँग लूँगा जैसे पिता जी से माँगता रहा हूँ। परन्तु मैं इस रस्म का, जिसमें मैं आपकी हीनता का आभास पाता हूँ, विरोध करता हूँ। इसे आप अविनय न समझें।”

“समझ गया बेटे, समझ गया। तुम बड़े तेजस्वी हो मेरे बेटे, वैसे ही जैसी मेरी राधा है, आशीर्वाद देता हूँ तुम दोनों सुखी रहो !”

ब्रज ने झुककर चरण-रज मस्तक से लगाई। सिनहा साहब चले गए। ब्रज देर तक उस ओर देखता रहा जिधर यह पुरुषवर धीरे-धीरे चलकर अन्ध-कार में विलीन हो गया था।

११

उस पहली मुलाकात के बाद राज की फिर पति से मुलाकात नहीं हुई। बातचीत भी नहीं हुई। एक ही कोठी में एक साथ रहते हुए भी ठाकुर साहब पत्नी के कमरे में फिर नहीं आये। परन्तु खाने-पीने और आवश्यकता की चीजों की राज को कोई तकलीफ नहीं हुई। पति से मिलने की उसने भी कोई चेष्टा नहीं की। नौकर-चाकर, दास-दासियों को यह बड़ा अद्भुत लग रहा था। ब्याह के अवसर पर ठाकुर साहब के परिवार और सम्बन्ध की अनेक स्त्रियाँ आई थीं। इनमें उनकी एक बहन अपने आधे दर्जन बच्चों को साथ लेकर आई थी, वही घर की मालकिन बनकर सारा प्रबन्ध कर रही थी। सुहाग रात की उसने तैयारी तो की परन्तु उस रात तीन बजे तक ठाकुर साहब कलब में रहे, आये तो नीचे की बैठक ही में सो रहे। राज ने भी उस कुसुम-सज्जित शयनागार में प्रवेश नहीं किया—वह अपने बैठने-उठने के कमरे ही में एक चटाई बिछाकर सो गई।

दसरे दिन ही राज को सब लोगों के साथ देहात में ठाकुर साहब के घर

जाना पड़ा। खूब बड़ी पुराने ढंग की हवेली थी। दूटी और उजाड़, बे-मरम्मत, गन्दी और पुराने सामानों से लदी-फदी। एक छोटी सी हवादार एकान्त सी अपेक्षाकृत साफ कोठरी राज ने अपने लिए ठीक कर ली।

दहेज की चर्चा चली। और बड़े ठाकुर ने खूब गर्जन-तर्जन किया। जब राज ने कहलाया कि दहेज को छोड़ आने की सारी जिम्मेदारी मेरी है। आप मुझसे कैफियत तलब कर सकते हैं। तो बड़े ठाकुर ने क्रुद्ध होकर कहा—“हम बहू-बेटियों से नहीं लगते। बहू को यहाँ बहू की भाँति रहना होगा। दहेज के मामले में मैं गजराज से निपट लूँगा।”

एक दिन रहकर छोटे ठाकुर शहर चले गए। अधिक की छुट्टी न थी। राज से उन्होंने मुलाकात नहीं की। राज को बड़े ठाकुर ने उनके साथ नहीं भेजा। उन्होंने कहा—“जब तक पूरा दहेज राई-रत्ती यहाँ न आ जायगा—बहू का बहू की भाँति कोई नेगाचार नहीं होगा। न उसे वापस घर भेजा जायगा न पति के पास। उसे तब तक देहात की हवेली में रहना होगा। भले ही उसकी आयु बीत जाय। बड़े ठाकुर ने राज के पिता को भी यह सूचना भेज दी। राज ने स्वसुर की दी हुई यह सजा स्वीकार कर ली। परन्तु यहाँ उसे एक कठिनाई का सामना करना पड़ा। वह न खत भेज सकती थी न संदेश। गाँव में पोस्ट-ऑफिस न था। घर में उसका कोई मित्र न था गाँव में कोई उसे जानता न था। वह सारे संसार में अकेली थी।

परन्तु उसने साहस न छोड़ा। उसने सोचा। ये लोग अपने सात लाख मय सूद वसूल करेंगे। और जब मैंने असल चुकाया है तो ब्याज भी मैं ही दूँगी। उसने यथा सम्भव अपने को उस नये वातावरण के अनुकूल बना लिया। एक बार उसने पूरी हवेली को घूम-फिरकर देख डाला। सबसे पहले उसने रसोईघर की ओर ध्यान दिया। एक बूढ़ी मिसरानी बड़े ठाकुर की रसोई बनाती थी। संभवतः रसोई बनाते-बनाते उसकी आधी आयु बीत गई थी। रसोई बहुत खराब—बिलकुल देहाती ढंग की—बनती थी, सामग्री की बरबादी भी काफी होती थी। बूढ़ी मिसरानी के रोकने पर भी उसने स्वसुर के लिए एक-दो तरकारियाँ अपने हाथ से बनाईं। रसोई तैयार होने पर उसने स्वयं

अपने हाथ से थाल परोसा, चटनी और अचार रखना वह भूली नहीं। फिर उसने उस जगह को अपने हाथ से साफ किया जहाँ स्वसुर बैठकर भोजन करते थे, सब ठीक करके स्वसुर को भोजन के लिए बुला भेजा।

बड़े ठाकुर ने आकर बदला हुआ सरंजाम देखा। उन्होंने क्रोध से आँखें तरेरकर कहा—“रसोई किसने बनाई है?”

दासी ने धीरे से कहा —“बहू रानी ने बनाई है।”

“उस चमार की बेटी के हाथ की रसोई नहीं खाऊँगा।” बूढ़े ठाकुर खड़ाऊँ खट-खट करते बिना भोजन किये ही चले गए। ठाकुर का उस दिन भोजन नहीं हुआ। राज ने भी भोजन नहीं किया।

दूसरे दिन राज रसोई में नहीं गई। बड़े ठाकुर भोजन कर गए। परन्तु राज ने अनशन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। दो-तीन दिन तक बड़े ठाकुर ने कोई परवाह नहीं की। जब तीसरा दिन भी बीत गया तब बड़े ठाकुर ने राज की कोठरी के द्वार पर आकर कहा —“बहू, हमें ऐसी धौंस दिखाने का क्या मतलब है, तू समझती है हम इससे डर जायेंगे।”

राज ने स्थिर गम्भीर स्वर में कहा—“पिता जी, मैं न धौंस दिखा रही हूँ, न घमण्ड कर रही हूँ, न आपको डराती ही हूँ।”

“तो भोजन त्यागने का क्या मतलब है?”

“मैंने आमरण अनशन करने की ठानी है।”

“किसलिए?”

“इमलिए कि आपने मुझे गाली दी, मुझे चमार की बेटी कहा, आपको अच्छी तरह मालूम है कि मैं ठाकुर गजराजसिंह की बेटी राज हूँ और आपकी पुत्र-वधू हूँ।”

“चमार की बेटी कह दिया तो ऐसा बड़ा अपराध हो गया।”

“कितना बड़ा अपराध है यह आप ही सोच सकते हैं, यदि मैं आपके पुत्र को चमार का बेटा कहूँ।”

“तो तेरी जवान मैं खोंच लूँगा।”

“आप ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि आप पुरुष हैं, किन्तु मैं स्त्री हूँ, केवल

अपने प्राण दे सकती हूँ।”

“सो तू एक बार नहीं हजार बार दे।” बड़े ठाकुर खड़ाऊँ खटखटाते चले गए। परन्तु साथ में एक चोट हृदय में लेते गए। अपने क्रोध पर उन्हें लज्जा आने लगी। बहू ने उन्हीं के पुत्र को चमार का लड़का कह दिया। यह सुनकर वे तिलमिला उठे, पर वे स्वयं अपने मुँह से निकली गाली पर भी लज्जित हुए। फिर भी मुँहजोर बहू को मनाने में उन्हें हेठी जान पड़ी। रात-भर उन्हें नींद नहीं आई। सुबह उन्होंने सब हकीकत पुत्र को लिख दी। दोपहर को जब वे भोजन करने गए तो दो कौर खाकर उठ आए। घर के दास-दासी और महाराजिन मालिक का इशारा पाकर बहू की मिन्नत-खुशामद कर आये। पर राज ने उनसे कोई बात नहीं की। कोई जवाब नहीं दिया। केवल एक बूढ़ी दासी से कहा—“तू चाहे तो मेरे पास रह, और मेरी सेवा कर, पर बड़े ठाकुर साहब से आज्ञा ले आ।”

ठाकुर ने आज्ञा दे दी। बूढ़ी दासी ने राज के कमरे के एक कोने में आसन जमाया। उसके मन में बहू के प्रति ममता जाग उठी।

१२

स्वसुर की गाली पर बहू ने आमरण अनशन किया है यह समाचार हवेली से बाहर उड़कर शीघ्र ही गाँव-भर में फैल गया। गाँव छोटा सा था—परन्तु उसमें कुछ पढ़े-लिखे और अच्छे विचारों के पुरुष भी थे। ऐसे भी लोग थे जो काँग्रेस और राजनीति में कुछ दखल देते थे, बहू का सत्याग्रह उनकी चर्चा का विषय बन गया। पनघट पर स्त्रियों ने भी ठोड़ी पर उँगली रखकर अपने-अपने रंग में रँगकर इस विषय की आलोचना की। गाँव में बहू से सहानुभूति रखने वाला एक दल बन गया। दल ने बहू की प्रतिक्रिया का समर्थन किया। कुछ तरुणों ने कहा—“ठीक है, ठाकुर को बहू को गाली देने का क्या अधिकार है।”

नम्बरदार की चौगल पर तीसरे ही दिन एक छोटी सी पंचायत हुई। पंचायत में गाँव के कुछ बूढ़े, कुछ युवा शरीक थे, पंचायत का आयोजन जिन

युवकों ने किया था उनका नेता रघुनन्दन था। रघुनन्दन कालेज में लॉ का विद्यार्थी था। वह गाँव के पुरोहित का पुत्र था।

रघुनन्दन ने खड़े होकर कहा—“काका, यह गाँव की इज्जत का प्रश्न है। एक महिला की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।”

जिन्हें ‘काका’ कहकर संबोधन किया गया था—वे सत्तर बरस के बूढ़े नम्बरदार जयरामसिंह थे। गाँव में चार आने के हिस्सेदार थे, ठाकुर के सम्बन्धी भी थे। उन्होंने नारियल पीते पीते कहा—“बात का बतंगड़ बना रहे रहो तुम लोग, ठाकुर ने एक बात कह दी तो क्या हो गया, बड़े-बूढ़े हैं। उनका हक है, इस पर क्या बहू बेटी को ऐसी जिद करनी चाहिए। फिर तो बहू-बेटी के मारे घर में बड़ों-बूढ़ों को साँस लेना भी दूभर हो जायगा।”

“काका, बड़े-बूढ़े हैं तो बहू बेटियों का लाड-दुलार करने को, गाली देने को नहीं।”

“जो लाड-दुलार करेंगे वे गाली भी देंगे। मार-पीट भी करेंगे। घर-घर में ऐसा ही होता है, इसमें नई बात क्या है—तुलसीदास ने कहा है—‘शूद्र गँवार ढोल पशु नारो, यह सब ताड़न के अधिकारी।’ बड़े लोग यदि लड़कों-बच्चों की डाट-डपट न करें तो फिर घर का कोई काम ही न चले।”

“ताड़ना की बात ठीक है पर कुछ कपूर भी तो होना चाहिए, अकारण गाली-गुफ़ता और मार-पीट करना सरासर अन्याय है, यह सहन नहीं किया जा सकता।”

“कारण जरूर होगा।”

“तो काका, आप बड़े ठाकुर से कारण पछिए !”

और भी बहुत बातचीत हुई। नम्बरदार जयराम ने ठाकुर के पास जाना स्वीकार किया।

परन्तु बड़े ठाकुर ने जयराम को एकदम आड़े हाथों लिया। ठाकुर के बेटे डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं, बड़ी जमींदारी है, धन है, नाम है, प्रतिष्ठा है, भला वे अपनी नाक पर मक्खी कैसे बैठने दे सकते हैं। गाँव में आज तक उनसे जवाब-तलब नहीं हुआ, सो क्या अब होगा ?

जयराम नम्बरदार भी काँटे के आदमी हैं, बड़े ठाकुर की यह ठसक उनसे न सही गई। उन्होंने लाठी उठाकर चलते-चलते कहा —“आप बड़े जमींदार हैं और अपने घर के तथा हम गाँव के मालिक हैं, यह ठीक है —पर आप किसी बे-गुनाह का खून नहीं कर सकते हैं, गाँव के भिर पर लात भी नहीं मार सकते। अब वह पुराना जमाना नहीं है।”

नम्बरदार चले आए। अपने घरेलू मामलों में गाँव का दखल देना ठाकुर को बिलकुल भी पसंद नहीं आया। परन्तु जयराम की धमकी से वे डर गए। वे सोच में पड़ गए। ऐसी गाली तो वे अपने मजिस्ट्रेट बेटे को भी दे सकते हैं, बहू क्या उससे भी बड़ी है। उनका क्रोध बहू पर और भी बढ़ गया।

रघुनन्दन के पिता एक कर्म-काण्डी धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। ज्योतिष और वैद्यक के भी ज्ञाता थे। धर्मशास्त्र भी पढ़ते थे। और विद्वान् पुत्र के सम्पर्क से आधुनिक राजनीतिक प्रगति से भी वे कुछ-कुछ परिचित थे। रघुनन्दन ने पिता से कहा —“पिता जी, क्या छोटी-छोटी बड़ों की —माता-पिता की सब आज्ञाएँ चाहे वे उचित हों या अनुचित —बिना विचारे माननी चाहिएँ ?”

“बड़ों की केवल वही आज्ञा माननी चाहिए जो न्याय और धर्म-सम्मत हो अन्य नहीं।”

“परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का सिर काट लिया था। वह उचित था या अनुचित ?”

“पुत्र, उस काल के रीति-रस्म कैसे थे, और परशुराम की माता का अपराध क्या था—यह आज नहीं कहा जा सकता। परशुराम ने यदि उचित कारण जानकर पिता की आज्ञा को धर्म और न्यायानुमोदित मानकर यह कार्य किया तो उचित था। और यदि केवल पिता की आज्ञा है इमी विचार से माता को मारा था तो अनुचित था।”

“और रामचन्द्र जी ने जो पिता की आज्ञा मानकर वन-गमन किया ?”

“वह उचित था।”

“क्यों उचित था ?”

“इसलिए कि उसमें कतव्य पर अधिकार की बलि दी गई थी। राज्य पर राम का अधिकार अवश्य था। पर पिता ने जो वचन कैकेयी को दिया था उसे पूरा करना भी उनका कर्तव्य था।”

“क्या दशरथ का वह वचन देना ठीक था?”

“उस काल ऐसा रिवाज था पुत्र, कि विवाह-काल में वर वधू को शुल्क देता था। दशरथ ने शुल्क में उसे केवल यह वचन दिया था कि जब जो माँगोगी दूँगा, उस वचन के आधीन होकर दशरथ को राज्य भरत को देना पड़ा, और राम को पिता की आन रखनी पड़ी।”

“अच्छा, विवाह में पिता पुत्री को जो दहेज देता है उसका मालिक कौन है?”

“पुत्री।”

“और विवाह में जो सुसराल वाले आभूषण और वस्त्र देते हैं—वह?”

“वह स्त्री-धन है, उसकी मालिक वधू है।”

“तो वह दहेज और स्त्री-धन का जैसा चाहे उपयोग कर सकती है?”

“कर सकती है।”

“तो पिताजी, ऐसा ही हुआ है, ठाकुर साहब की पुत्र-वधू ने यही अपराध किया है।”

“यह अपराध नहीं है पुत्र!”

“इसे ही अपराध मानकर बड़े ठाकुर ने उसे कठोर दण्ड दिया है, उसे पिता के घर तथा पति के पास रहने से वंचित कर दिया है। यहाँ देहात में उसे एक प्रकार से वंदिनी कर रखा है, और उसने श्वसुर को श्रद्धापूर्वक भोजन परसा तो उसने खाने से ही इन्कार नहीं कर दिया बल्कि उसे ‘चमार की बेटी’ कहा।”

“यह अनुचित किया ठाकुर ने।”

“वधू ने प्रतिकार स्वरूप आमरण अनशन किया है।”

“उसका सत्साहस अभिनन्दनीय है। जब स्त्रियाँ ऐसा साहस करेंगी, तो उनकी शताब्दियों की दासता से मुक्ति हो जायगी।”

“पिताजी, हमे बधू की सहानुभूति में कुछ करना होगा।”

“क्या करना होगा?”

“बड़े ठाकुर के स्वेच्छाचार पर अंकुश लगाना होगा।”

“इतने बड़े ठाकुर से रार मोल लेकर गाँव में रह सकोगे?”

“तो गाँव जैसे पठानी-राज्य की अन्धेरगर्दी के नमूने रहेंगे, वहाँ व्यवस्था, सभ्यता, न्याय-जैसी कोई वस्तु ही नहीं रह सकती।”

“क्या तुम्हारे समर्थक और लोग भी हैं?”

“ज़रूर हैं। आधा गाँव हमारा साथ देगा। ठाकुर यों मनमानी थोड़े ही कर सकते हैं।”

“तो मैं भी तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारे दल का मैं नियन्त्रण करूँगा। कल सुबह अपने दल-बल के साथ तुम श्रीनृसिंह के मन्दिर में भोग आरती के समय से प्रथम ही आ पहुँचो।”

“बहुत अच्छा पिताजी!”

“परन्तु एक बात समझ लो, ठाकुर के यहाँ से जो हमारी सात पीढ़ियों से आजीविका चली आ रही है, वह खत्म हो जायगी।”

“वह तो पिताजी, हमें स्वयं खत्म कर देनी चाहिए। वह आजीविका क्या है एक प्रकार की भिक्षा-वृत्ति ही है। ये ठाकुर हम ब्राह्मणों को भिक्षु से अधिक और कुछ नहीं समझते।”

वृद्ध ब्राह्मण पुत्र की बात सुनकर हँस दिए। उन्होंने कहा—“तो पुत्र एक सुशिक्षिता महिला की सम्मान-रक्षा के साथ एक ब्राह्मण-कुल भी यजमान की दासता से मुक्त हो जायगा, यह अच्छा ही है।”

रघुनन्दन उत्साह से गाँव में अपना दल संगठित करने को चला गया। उसके मित्रों ने इस समय खूब उत्साह प्रदर्शित किया।

१३

‘जी का नाम था, नारायण शर्मा। गाँव में श्रीनृसिंह देव का एक मंदिर था। देवालय की स्थापना वर्तमान बड़े ठाकुर के प्रपिता श्री

रणजयसिंह ने सत्तावन के विद्रोह के बाद, जब उन्हें अंग्रेजों से इलाके इनाम में मिले थे, की थी। तभी से नारायण शर्मा के पूर्वज परम्परा से देवालय के पुजारी होते आए हैं। ठाकुर की हवेली से उन्हें नित्य नियमित रूप में देवार्चन-नैवेद्य आदि के लिए दो रुपया नकद और भोग-सामग्री मिलती है। अपने बाप-दादों की भाँति नारायण शर्मा भी नित्य स्नान-संध्या से निवृत्त होकर हवेली में जाते, ठाकुर को आशीर्वाद देते और भोग-दक्षिणा लाकर ठाकुर-पूजा करते रहे हैं। रोग शोक में भी उनकी यह चर्चा कभी रुकी नहीं। देवार्चन उनका नित्य-नियम था।

किन्तु आज उन्होंने अपनी पीढ़ियों की परम्परा को त्याग दिया। आज वे ठाकुर की ड्योढ़ियों पर नहीं गये। ड्योढ़ियों में जाकर वे बड़े ठाकुर को संध्या-वन्दन भी कराते थे, वह भी आज नहीं हुआ। ठाकुर स्नान करके बैठे प्रतीक्षा करते रहे। नारायण शर्मा ने मन्दिर में जाकर स्वयं स्नान करके देवता को स्नान कराया और आसन बिछाकर बैठ गए। मन्दिर का पट उन्होंने बन्द कर लिया।

देवालय के कुएँ पर गाँव के बहुत लोग स्नान करने जाते थे। स्नान-ध्यान करके देव-दर्शन करते थे। देव-दर्शन करके ही बहुत लोग भोजन करते थे, परन्तु आज किसी को देव-दर्शन नहीं हुए। मन्दिर के पट बन्द थे और पुजारी नारायण शर्मा देव-द्वार पर आसन बिछाये मौन मुद्रा से बैठे थे।

शीघ्र ही लोगों में इस बात की चर्चा होने लगी। आज मन्दिर के पट बन्द क्यों हैं। गाँव के भावुक जन आश्चर्य से आपस में इस विषय को लेकर चर्चा करने लगे। कुछ लोगों ने पुजारी जी से प्रश्न भी किये, परन्तु पुजारी जी ने किसी को उत्तर नहीं दिया। वे मौन मुद्रा से अविचल बैठे रहे। भीड़ बढ़ती चली गई। और लोग भाँति-भाँति को अमङ्गल आशंकाएँ करने और चर्चा करने लगे। इसी समय गाँव के १०-२० जनों को लेकर रघुनन्दन भी आ पहुँचा। इस मण्डली के अग्रभाग में नारियल हाथ में लिये आपके नम्बरदार जयरामसिंह थे। उन्होंने आकर देखा—मन्दिर का वातावरण ही कुछ और है। पहले ही से उपस्थित लोगों ने नम्बरदार से देव-दर्शन बन्द होने

की बात कही। बूढ़े जयरामसिंह ने हाथ का नारियल एक तरुण को सौंप, आगे बढ़कर उच्च स्वर से कहा—“पुजारी जी, यह क्या बात है कि आज मन्दिर के पट बन्द हैं। पट खोल दीजिये और सबको देव-दर्शन करने दीजिये।”

“देव-दर्शन नहीं होगा, मन्दिर के पट नहीं खुलेंगे, देवता को भोग नहीं लगेगा और देवता का यह पुजारी ब्राह्मण भी अन्न-जल त्यागकर यहीं प्राण-विसर्जन करेगा।” नारायण शर्मा ने उच्च स्वर में प्रभावशाली ढंग पर उक्त वाक्य कहे। उनकी यह अयाचित अकल्पित बात सुनकर लोग आश्चर्य-विमूढ़ हो गए। लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

जयरामसिंह ने फिर कहा—“इस देव-कोप का कारण क्या है?”

“कारण है एक निर्दोष बालिका पर अत्याचार। बड़े ठाकुर ने अपनी पुत्र-वधू पर अत्याचार किया है, उसका जब तक निराकरण नहीं होगा, तब तक न देव-दर्शन होगा, न देवता को भोग लगेगा, न ही यह ब्राह्मण अन्न-ग्रहण करेगा। पराई बेटी गाँव में ब्याही आकर भूखी बैठी रहे तो न गाँव का देवता अन्न ग्रहण करेगा, न ब्राह्मण।”

ठाकुर जयराम सिंह ने आगे बढ़कर कहा—“जब तक देवता और ब्राह्मण को भोग नहीं लगता, मैं भी अन्न त्यागता हूँ।” वह धीरे गति से कुएँ पर गये—हाथ-पैर का मार्जन किया और मन्दिर की पौर में धरना देकर जा बैठे।

हम भी भोजन नहीं करेंगे, हम बिना देव-दर्शन किये अन्न-जल न करेंगे। दस बीस आवाजें ऊँची हुईं। और एक-के बाद-एक, अनेक जन मन्दिर की पौर में धरना देकर बैठ गए।

एक व्यक्ति ने पूछा—“ठाकुर ने क्या किया है और उसका कारण क्या है?”

“यह जाकर बड़े ठाकुर से पूछो” नारायण शर्मा ने कहा। इसके बाद नारायण शर्मा मौन होकर बैठ गए। रघुनन्दन ने संक्षेप में ब्यौरेवार सब हाल कहकर लोगों को समझाया—“भाइयो, जो सबल हैं, वे निर्बल पर मनमाना अत्याचार करते रहें और सब लोग चुपचाप देखते रहें तो फिर मनुष्यों

और पशुओं में अधिक अन्तर न रह जायगा । यह सुधार का युग है । हमारे घरों में हमारी माताओं और बहनों ने पुरुषों के अत्याचारों से बड़े कष्ट पाये हैं, आज हमारी बहनें और माताएँ भी पढ़-लिख गई हैं, समझदार हो गई हैं उनका आदर करना, उनके साथ न्याय, उदारता और समानता का व्यवहार करना हमारा कर्तव्य है, बड़े ठाकुर ने बिना किसी दोष के केवल स्वार्थ और घमण्ड में बहू का अपमान किया है, जबकि उन्हें अपनी पुत्री की भाँति उसका दुलार करना चाहिए था ।”

सब लोगों ने उत्तेजित होकर कहा—“चलो, अभी बड़े ठाकुर से हम जवाब-तलब करेंगे । न होगा तो हम भी देव-द्वार पर अनशन करेंगे ।”

बात-की-बात में गाँव-भर में यह चर्चा फैल गई । आस-पास के गाँवों के भुण्ड-के-भुण्ड लोग मन्दिर में आ जुटे । लोग मृदंग बजाकर मंजीरे की ताल पर बैठकर हरि-कीर्तन करने लगे—

“निर्धन के धन राम धनी रे ।”

“रघुबर तुमको हमरी लाज, कान्हा गज को फन्द छुड़ायो ।”

भावुक देहाती आबाल वृद्ध भूम-भूमकर हरि-कीर्तन में योग देने लगे । उस दिन गाँव में अनेक घरों में चूल्हा नहीं जला ।

बूढ़े ठाकुर के लिए यह एक अनहोनी घटना थी । सब देख-सुनकर बड़े ठाकुर एकदम घबरा गए । भोजन उन्होंने भी नहीं किया । घर में और किसी ने भी नहीं किया । परन्तु गाँव के लोगों ने जब उन्हें घेर लिया तो अपने स्वभाव के अनुसार खीझकर उन्होंने सबको डाँट-फटकार दिया । उनकी डाँट-फटकार से नाराज होकर गाँव ने बड़े ठाकुर से सब प्रकार का सहयोग त्याग दिया ।

नाई ने कहा—“मैं ठाकुर की हजामत नहीं बनाऊँगा ।”

धोबी ने कहा—“मैं कपड़े नहीं धोऊँगा ।”

भंगी ने कहा—“मैं हवेली नहीं कमाऊँगा ।”

मिसरानी ने कहा—“मैं रसोई नहीं बनाऊँगी ।”

सेवकों ने कहा—“हम सेवा नहीं करेंगे ।”

गाँव वालों ने तय किया—“वे राजा हैं तो दूसरों पर जुल्म कैसे कर सकते हैं ! गाँव में सबकी मर्यादा रहेगी। गाँव की बहू का अपमान गाँव का अपमान है, हम नहीं सहेंगे।”

बड़े ठाकुर विमूढ़ हो गए। इसी समय राघवेन्द्रसिंह भी आ गए। बहुत देर तक पिता-पुत्र में वार्तालाप हुआ। पुत्र शिक्षित था—आज की बदलती हुई दुनिया से जानकार था, मजिस्ट्रेट था। राज की शिक्षा, योग्यता और तेजस्विता को वह जानता था। उसने समझा-बुझाकर पिता को समझोते के लिए राजी कर लिया। फिर उसने राज से बात की।

अधिक बात न बढ़ाकर उन्होंने कहा—“राज, पिताजी के व्यवहार के कारण मैं दुःखित हूँ। अब तुम इस बात को भूल जाओ और भोजन करो। नाहक गाँव में एक तूफान खड़ा हो गया है।”

“पिताजी के दुर्व्यवहार से आपको दुःख हुआ, यह जानकर मुझे संतोष हुआ, पर जब तक पिताजी को अपने दुर्व्यवहार पर दुःख न हो, मैं अनशन नहीं त्यागूँगी !”

“उन्हें भी दुःख है राज।”

“यह अभी तक मुझे ज्ञात नहीं हुआ।”

“मेरे कहने का विश्वास करो।”

“विश्वास के उपयुक्त कारण देखते ही मैं विश्वास कर लूँगी, आप विश्वास रखिए।”

“तो क्या तुम चाहती हो, वे खुद तुमसे आकर क्षमा माँगें !”

“क्यों नहीं, यदि वे समझते हैं कि उन्होंने मेरे प्रति अन्याय किया है।”

“परन्तु उनकी एक मर्यादा है, इसका भी तो खयाल करो।”

“यदि पिताजी की मर्यादा का खयाल मुझे न होता तो मैं कदापि एक साधारण बात को इतना महत्त्व नहीं दे सकती था।”

“तो तुम चाहती क्या हो कि वे तुमसे आकर क्षमा माँगें ?”

“मुझसे नहीं, मेरे पिताजी से। मुझे उन्होंने ‘चमार की बेटी’ कहा है, अतः मेरे पिताजी को भी गाली दी है। पिता जी जब उन्हें क्षमा कर देंगे—तो मैं

भी उनकी बात को दरगुज़र कर दूँगी।”

“तो क्या तुम्हारा कहना है कि वे तुम्हारे पिता के पास क्षमा-याचना करने जायँ।”

“निस्संदेह।”

ठाकुर साहब को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा — “यह कदापि नहीं हो सकेगा राज !”

“मैंने तो आपसे या पिताजी से इसके लिए अनुरोध किया नहीं था।”

“तो तुम यह अनशन नहीं त्यागोगी ?”

“क्या आप मुझे धमकी दे रहे हैं ?”

“मैं पूछता हूँ।”

“मैं इन्कार करती हूँ।”

“क्या तुम मेरे सवाल का जवाब भी न दोगी ?”

“जो सवाल नम्रता और शुद्ध भावना से केवल मेरी मनोभावना जानने के अभिप्राय से किया जायगा, उसी का जवाब दूँगी—दूसरे का नहीं।”

“तो मुझे तुमसे हाथ जोड़कर अदब से बात करनी होगी।”

“आपके नौकर-चाकर और मुवक्किल लोग इस ढंग से बात करते हैं और आप भी शायद अपने अफसरों से इसी प्रकार बातचीत करते हैं। पर मैं तो इस प्रकार की बातचीत न करने की आदी हूँ, न सुनने की। मैं तो यही चाहती हूँ कि सरल हृदय से प्रेमपूर्वक मर्यादा से बातचीत की जाय।”

“खैर, तो मेरे पास अधिक समय नहीं है। मैं तुम्हारा अन्तिम जवाब सुनना चाहता हूँ।”

“आप अब जा सकते हैं।”

“यानी आप मुझे हुक्म देती हैं।”

“आप अब जा सकते हैं।”

“मैं पूछता हूँ तुम्हारा जवाब क्या है ?”

“आप यहाँ से चले जाइये।”

“और यदि न जाऊँ ? तो क्या धक्के देकर निकाल दोगी ?”

“नहीं, समझूँगी कि आपमें आत्म-सम्मान की रत्ती-भर भी भावना नहीं है।”

“हूँ।”

राघवेन्द्रसिंह बैठे-बैठे होठ काटते रहे। फिर खड़े होकर कहा—“शेरो को पालतू करना मैं जानता हूँ। लाख की डिग्री अभी तुम्हारे पिता पर खड़ी ही है। तुम्हें मैं चेतावनी देता हूँ कि यदि तुरन्त सीधो राह अपना हठ नहीं छोड़ोगी तो मुझे विवश हो तुम्हारे पिता की वह दुर्दशा करनी होगी जिसके भय से तुम्हारे-जैसी मगरूर औरत को अपना शरीर बेचना पड़ा है।”

“उसका मूल्य आप वसूल कर चुके, फिर भी आपकी वह भावना अभी बाकी ही है?”

“मैंने कोई रसीद भर-पाई तो लिखकर दी ही नहीं है। भलमनसाहत का सौदा था। सात लाख रुपये में तुम्हें खरीदकर इसीलिए लाया हूँ कि तुम्हारे पैर मेरे पिता पूजें! ऐसा ही है तो तुम्हारा बिगड़ा ही क्या है। चली जाओ पिता के घर। और बाप-बेटी मिलकर चुका दो मेरा रुपया। अभी तुम जवान हो—बहुत गाहक मिल जायेंगे!”

राज ने पति की इन बातों का उत्तर नहीं दिया। राघवेन्द्रसिंह भी तीर-तमंचे चलाकर बाहर चले आए। भोंक में आकर वह बहुत खराब बात कह गए थे, इसका उन्हें पछतावा हो रहा था। परन्तु क्रोध और झूँझल से वे अपना मस्तिष्क संतुलित न रख सके।

पिता-पुत्र में बहुत बात हुई। पर कुछ निर्णय नहीं हुआ। पिता ने कहा—“इस आफत को तू अपने साथ ले जा” परन्तु राघवेन्द्र को ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। उसने सोचा, ‘वहाँ तो इसकी इस तूफान बदतमीजी से शहर-भर में गोंगा मच जायगा।’ रात ही को राघवेन्द्र सिंह चले गए। कुछ भी निर्णय नहीं हुआ।

१४

और तीन दिन बीत गए। नृसिंह जी के मन्दिर में आस-पास के गाँवों से ५ हजार स्त्री-पुरुषों की भीड़ जुट गई। एक अच्छा-खासा मेला लग गया। गाँव के तरुणों ने बाहर से आये लोगों के लिए जल की और शयन की व्यवस्था की। अनेक दुकानें तम्बोली, हलवाई और चना-चबैना की लग गईं। रघुनन्दन के तीखे भाषणों ने लोगों को उत्तेजित कर दिया। ठौर-ठौर बैठकर लोग हरि-कीर्तन करने लगे।

बड़े ठाकुर की हवेली सड़ने लगी। भंगी, सेवक, दास-दासी सबके अभाव से पुरानी गन्दी हवेली और भी गन्दी हो गई। भूख के मारे बूढ़े ठाकुर जर्जर हो गए। धर्म-भीरुता ने उन्हें और भी विचलित कर दिया। चौथे दिन भोर ही में उठकर वे चुपचाप लाठी टेकते हुए राज की कोठरी के द्वार पर जा खड़े हुए। राज ने देखा तो उठकर बड़े ठाकुर के चरण में मस्तक टेक दिया। बूढ़े ठाकुर की आँखों से भर-भर आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—“बहुत हुआ बहू, अब माफ़ कर, और अनशन त्याग। इस घर की लाज न गँवा।”

“पिता जी की क्या आज्ञा है?”

“तू भोजन कर, मैं फिर कभी तुझे कोई अपशब्द नहीं कहूँगा। बूढ़ा आदमी हूँ—गुस्से से एक बात निकल गई मुँह से—तो उसका इतना तूम-तझाम बाँधना था बहू?”

“तो सचमुच आप समझते हैं कि आपका व्यवहार अनुचित और अन्याय-मूलक था?”

“कह तो रहा हूँ। अब ऐसा नहीं होगा।”

“अच्छी बात है, आप पुरोहित जी के पास जाइए, और यह सब बात उनसे कहिए।”

“क्या सबके सामने कहना होगा, तू बहू गाँव में मेरी हेठी कराना चाहती है?”

“नहीं पिताजी, आप यदि समझते हैं कि आपसे भूल हुई है, तो उसे

सबके सामने स्वीकार कर लेना ही आपका बड़प्पन है।”

“मैं चलकर तेरे पास आया यह काफी नहीं है ?”

“नहीं है पिताजी, आप क्षमा कीजिए। आपने मेरे साथ जिस भावना और मनोवृत्ति के वशीभूत होकर अपमानजनक व्यवहार किया है—वह भावना हमारे जातीय संस्कार से सम्बन्ध रखती है, जिसके कारण हमारी लाखों-करोड़ों बहनें दासता और अपमान का जीवन सुसराल में भोगती हैं। मेरा सत्याग्रह तो उसी के विरोध में है, अपने अपमान के विरोध में नहीं। इसी से गाँव ने मेरा साथ दिया है, और मैं आज यह आशा करती हूँ कि सारा संसार मेरा साथ देगा।”

बड़े ठाकुर ने राज की बात सुनकर कुछ जवाब नहीं दिया। वे चुपचाप जैसे आये थे, लौट गए। और भी दो-दिन बीत गए। मन्दिर के चारों ओर उत्तेजना का वातावरण बढ़ता जा रहा था। राघवेन्द्रसिंह ने पुलिस को अपने दंग पर सूचना दे दी थी, पुलिस ने एक हथियारबन्द दस्ता मन्दिर पर भेज दिया था।

इस अद्भुत सत्याग्रह के छठे दिन उत्तेजित तरुणों ने ठाकुर का जनाजा निकालने का तय किया। इससे स्त्री-पुरुषों में खूब उत्तेजना की लहर दौड़ गई। ठाकुर साहब का पुतला बनाकर लोगों ने जनाजा निकाला। भीड़-की-भीड़ उसके साथ थी, गाँव-भर में जनाजे का जलूस निकला। हवेली के सामने भी वह गया। लोग चिल्ला रहे थे:—

“बड़े ठाकुर हाय-हाय।”

“दकियानूसी विचार वाले हाय-हाय।”

“स्त्रियों की दासता हाय-हाय।”

ठाकुर साहब क्रोध और क्षोभ से पागल हो गए। इसी समय पुलिस ने जुलूस पर लाठी-चार्ज किया। लाठियों की चोट खाकर भी तरुणगण जनाजा लेकर वहीं बैठ गए। उन्होंने हवेली के सामने ही पुतले को भस्म कर दिया। कोई दो दर्जन आदमियों को पुलिस गिरफ्तार करके ले गई।

बात बढ़ती जा रही थी। अफवाह गर्म थी कि सदर से घुड़सवार पलटन आ

रही है। नारायण शर्मा अचल थे। रघुनन्दन को मण्डली आग उगल रही थी। रघुनन्दन गिरफ्तार हो चुका था। अब उत्तेजित होकर स्त्रियों ने भी अपना एक दल संगठित किया था। वह दल जगह-जगह हाथ-माथा और छाती पीटकर—“ठाकुर साहब हाय-हाय, बूढ़े ठाकुर हाय-हाय, जुल्मी ठाकुर हाय-हाय” के नारे लगा रहा था। लड़कों ने छोटे-छोटे कपड़े और कागज के पुतले बनाए थे, वे जगह-जगह उन्हें जलाकर “मर गए बड़े ठाकुर हाय हाय” चिल्ला रहे थे। भीड़ अब दस हजार हो चुकी थी, सुना था सदर से कांग्रेस-कार्यकर्ता और महिला-मण्डल भी आ रहा है। अब मंडल-दल के आने की खबर भी किसी तरह राज को मिल गई थी।

पुलिस का घुड़सवार दस्ता आ पहुँचा। उसके साथ मे स्वयं पुलिस-कप्तान था। मजिस्ट्रेट राघवेन्द्र भी अपनी सरकारी जिम्मेदारी से साथ थे। मजिस्ट्रेट से सलाह करके पुलिस कप्तान ने हुक्म दिया कि तुरन्त भीड़ तितर-बितर हो जाय, नहीं तो भीड़ पर गोली चलाई जायगी। घुड़सवार दल ने अपनी राइफलें सँभाल लीं।

लोगों ने सीने तान दिए। बहुत सी महिलाएँ पुरुषों से आगे थीं। इसी समय बड़े ठाकुर नंगे बदन, पाँव-प्यादे भीड़ को चीरते हुए सीधे मन्दिर की पौर पर चढ़ गए। सबके देखते-देखते उन्होंने जमीन में गिरकर देवता को साष्टांग प्रणाम किया। फिर उन्होंने नारायण शर्मा से कहा—“गुरु जी! मुझे बहू ने आपके पास भेजा है, आप उससे मेरा अपराध क्षमा करा दीजिये। मैं सब प्रकार के दण्ड सहन करने को तैयार हूँ।”

नारायण शर्मा ने ‘जयनृसिंह देव’ का प्रचण्ड रव किया और बड़े ठाकुर से कहा—“तब पहले पुलिस को यहाँ से विदा कीजिये।”

पुलिस हटा दी गई। राज ने कहलाया कि ‘बड़े ठाकुर एक पत्र में अपना अपराध स्वीकार करके पिताजी से अपने अपराध की क्षमा-याचना करें।’ ठाकुर में विरोध की शाक्त नहीं रह गई थी। उन्होंने जो-जो कहा गया—वही-वही स्वीकार किया। पत्र राज को दिखाकर गजराजसिंह को भेज दिया गया। ठाकुर ने कहा—‘मैं कर्जे के रुपये और दहेज से भी दस्तबर्दार होता हूँ।’ पर राज ने कहा—‘उसके

सम्बन्ध में मेरा कुछ कहना नहीं है। आप उसके लिए पिता जी से या मुझसे लड़ सकते हैं।’

सब मामला साफ़ हो गया। देवता का धूम-धाम से अभिषेक-पूजन हुआ। भोग लगा, फिर ब्राह्मण-भोजन हुआ। इसके बाद बड़े ठाकुर ने भोजन किया। सबके बाद बड़े ठाकुर के चरणों में सिर नवाकर राज ने संतरे का रस ग्रहण किया।

आस-पास के पचासों गाँवों में राज के इस वीरत्व की चर्चा अनेक रूप धारण करके होने लगी।

१५

सिनहा साहब को ब्रज के पिता से मिलकर बात करने में सफलता नहीं मिली। पुराने विचार का बूढ़ा ठाकुर किसी तरह कायस्थ की बेटी से बेटे का ब्याह करने को राजी नहीं हुआ। जाति-मर्यादा, समाज-रीति सबकी बाधाएँ एक बारगी ही उसके आगे आ खड़ी हुईं। सिनहा साहब को ठाकुर से बात करने जाकर अपमान-लांछना भी सहनी पड़ी। ठाकुर ने समझ लिया—इसी की बेटी ने डोरे डालकर ब्रज को अपने रूप-जाल में फँसाकर उसे पथ-भ्रष्ट किया है। इसी के कारण उसके खानदान की इज्जत खत्म हो गई, इसी के कारण उसका ऐसा अच्छा आशाकारी बेटा उसके हाथ से निकल गया। उसने आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों की आड़ में सिनहा साहब की लड़की के लिए भी अवाच्य कह डाले।

किन्तु समुद्र की भाँति गम्भीर सिनहा साहब ने सब-कुछ सहन किया। एक शब्द भी उत्तेजना का नहीं कहा। वे चुपचाप बूढ़े ठाकुर को प्रणाम करके घर चले आए। सबसे पहले उन्होंने ब्रज से मुलाकात करके सब बात कही। और अब ब्रज के क्या विचार हैं, यह पूछा। ब्रज ने कहा—“मेरे विचार करने की तो अब कोई गुञ्जाइश ही नहीं है। किन्तु आपके अपमान का मुझे बहुत खयाल है। पिता जी देहाती हैं, पुराने विचारों के हैं, उनकी दृष्टि में जाति-मर्यादा बहुत बड़ी चीज़ है। इसी से वे उत्तेजित हो गए हैं। यों वे बड़े अच्छे हैं, सम्भव हो

तो आप उन्हें क्षमा कर दें। या उनके इस पुत्र को जैसा ठीक समझ दण्ड दें।”

सिनहा साहब ने कहा—“इस बात को छोड़ो ब्रज, तुम कहो कि अब भी तुम अपने निर्णय पर दृढ़ हो ?”

“मैं जीते-जी दृढ़ रहूँगा।”

“तब ठीक है, चिन्ता मत करो, मैं अपना कर्तव्य पूरा करूँगा।” उन्होंने ब्रज के कंधे को थपथपाया और धीरे-धीरे घर आये। घर आकर उन्होंने राधा से बात नहीं की। राधा पिता के निर्णय को जानने के लिए बड़ी उत्सुक थी। पर सिनहा साहब चुपचाप आकर अपने काम में लग गए। जैसे कुछ नई बात हुई ही न हो।

परन्तु मौसी बहुत घुट रही थी। वह इस प्रसंग पर अच्छी तरह सिनहा साहब से बातचीत करने का सुयोग खोजने लगी। अभी तक उसकी आशा माधव के सम्बन्ध में थी। परन्तु उसका साहस इस विषय में सिनहा साहब से बात करने का नहीं हुआ। राधा से उसने अवश्य चर्चा करनी चाही, पर राधा ने भी कन्नी काट दी। तब उसने हारकर माधव का ही आसरा लिया। एक दिन चाय-टोस्ट खाकर और गोल्ड फ्लेक का सिगरेट मुँह में दबाये ज्यों ही माधव सूट-बूट से लैस होकर घर से बाहर जाने लगा, त्यों ही मौसी ने टोका—“यह सज-धजकर सवारी चली कहाँ रईसजादे की, मैं कहती हूँ ?”

“बुरा किया चाची, टोक दिया। क्या कहते हैं उसे—बैड लक—सगुन बिगड़ गया।”

“काहे का सगुन बिगड़ गया रे, क्या ब्याह करने जा रहा है ?”

“ब्याह की क्या औकात ? ब्याह एक नहीं पचास हो सकते हैं, लेकिन इम्तिहान में पास तो एक ही धार होऊँगा।”

“क्या तू पास हो गया ?”

“रिजल्ट निकलने दो, फिर देखना। इसी शनिवार को रिजल्ट आउट होगा। आज हो गया मंगल। बीच में रहे—बुध-बृहस्पति शुक्र—तीन दिन—माई गाड सिर्फ तीन दिन, नया सूट सिलने दिया है—नामाकूल दर्जा के पास जा रहा था, शुक्र की शाम को यानी फ्राइडे इवनिंग को नहीं दिया तो कहे देता हूँ, गोली

मार दूँगा—मर्दूद को ।”

“लेकिन सूट सिलवाया किसलिए गया है ?”

“कमाल कर दिया चाची, कभी-कभी तो तुम ऐसी कमअक्ली-फुलिशनैस-की बातें करने लगती हो कि क्या कहूँ । रिजल्ट आउट होगा । मैं रिजल्ट देखने स्कूल जाऊँगा, सो क्या पहनकर ? बताओ तो अन्ना चाची का लड़का हूँ । कोई जुलाहे का लड़का तो हूँ नहीं ?”

“तो रोका किसने है, जा, लेकिन कहीं इस बार भी फेल हुआ तो ?”

“यह लो, फिर पत्थर मारा । लो अब न जाऊँगा । भाड़ में जाय सूट और रिजल्ट, बिगाड़ दिया सब सगुन ।”

वह धम से वहीं सीढ़ी पर मुँह फुलाकर बैठ गया । अम्मा ने बड़े-बड़े ताल के चश्मे के भीतर से गोल-गोल आँखें घुमाकर पान की गिलोरियों से फूले हुए गालों को और फुलाकर कहा—“फूटी मेरी तकदीर, अब आजकल के लड़कों के सामने बात करना भी मुश्किल है, अरे जा, आशीर्वाद देती हूँ । पास हो जायगा ।”

माधव एकदम खुशी से उछल पड़ा । उसने कहा—“बस चाची, क्या कहूँ । तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर, पास होने दो, फिर देखना माधव को । अफसरों को नीचा न दिखा दूँ तो वाह ।” फिर हँसकर कहा—“सिनहा साहब को देखा है चाची, कैसे तुतला-तुतलाकर, अटक-अटककर अंग्रेज़ी बोलते हैं कि सुनकर हँसी आती है ।”

“अच्छा, अच्छा, हँसी आती है तो हँस, लेकिन तूने उस बात पर भी ध्यान दिया है ?”

“किस बान पर ?”

“राधा के ब्याह की बात पर ।”

“उसमें क्या है, अब तो वह मुझे देखते ही खुश हो जाती है, खूब घुल-घुलकर बात करती है । लेकिन जब मैं अंग्रेज़ी में बात करने लगता हूँ तो वह भट हिन्दी बोलने लगती है । हूँ !”

“सो तो है, पर कहीं तू देखता ही न रह जाय, कुछ सुना—जीजा जी क्या कर रहे हैं ?”

“वे अब और क्या करेंगे। पर चाची, रिजल्ट आउट होने से पहले मैं ब्याह करने का नहीं, चाहे जो हो। उसके बाद जैसी तुम्हारी मर्जी।”

“तो रिजल्ट में तो अब तीन ही दिन रह गए।”

“बस तीन दिन !”

“लेकिन तू राधा से जरा साफ-साफ बात कर ले।”

“साफ-साफ बात वह करेगी ? हिन्दुस्तानी लड़की है, पढ़-लिख गई तो क्या हुआ, शर्माती है।”

“पर मैं कहती हूँ तो दो ठूक बात कर—नहीं तो पल्लतायगा।”

माधव चाची का मुँह देखकर सोच में पड़ गया। अन्ना ने कहा—“अभी जा, वह ऊपर अकेली बैठी है। अच्छा मौका है।”

“तब जाता हूँ।”

और माधव खटाखट बूट मचमचाता ऊपर चढ़ गया। राधा कोई रशियन उपन्यास सीने पर रखे चटाई पर लेटी तन्मय होकर पढ़ रही थी। चौड़ी पाट की सफेद उज्ज्वल धोती उसके अंग में लिपटी थी, माधव के आने की आहट पाकर वह बैठ गई। और चटाई पर उसे बैठने को जगह करती हुई हँसकर बोली—“आज तो खूब ठाठ बनाये हैं।” फिर गहरे लाल रंग की टाई को हाथ से छूकर कहा—“वण्डरफुल, जैसे कलेजे में आग ही लग गई हो।”

“अहा—फायन इन-द-हार्ट” खूब समझती हो तुम राधा, लेकिन मैं तो सिम्पली फ्रेट कर रहा हूँ।”

“अरे, यह क्यों ? क्या कोई प्रेम का मामला तो नहीं है ?”

“ऐसा ही कुछ समझो, आई वण्डर, जितना मैं लड़कियों से भागता हूँ, उतना ही, आई से—बस कुछ कह नहीं सकता, हाँ, क्या पढ़ रही थीं तुम ?”

“एक रद्दी-सी किताब है, किसी रूसी भालू की लिखी हुई ?”

“मैं यह सब नहीं पसन्द करता, मैं तो शेक्सपियर, बायरन, शैली और क्या नाम...”

“तुम्हारा टेस्ट काबिल कद्र है, कल मेरी सहेलियाँ कह रही थीं...।”

“अच्छा ! क्या कह रही थीं ?”

“कुछ ऐसी उलझी-सुलझी-सी बातें थीं । मैं तो समझ ही न पाई भाई, मुझे तो शक-सा हो गया ।”

“कैसा शक ?”

“यही कि कहीं वे तुमसे प्रेम तो नहीं करने लगी हैं ।”

“गाड, यह तो सम्भव ही सम्भव है; हाँ, क्या-क्या नाम था उनका ?”

“मृणाल थी, कुमुद थी, ऊषा थी, एक और थी, उसका नाम नहीं बताऊँगी ।”

“क्यों नहीं बताओगी भला ?”

“भूल गई ।”

“यू नाँटी गर्ल, मैं समझ गया—वह तुम थीं, तुम ।”

“मैं क्यों होने लगी भला ?”

“प्रेम अंधा होता है राधा, मैं तो बहुत जगह पढ़ चुका हूँ । लेकिन आइये, अगर कुछ करना है, तो अब कर ही डालना चाहिए । बस रिजल्ट आउट होते ही—आइ एम रेडी ।”

“अच्छा, तो कुछ इरादा कर ही लिया ।”

“राधा, आइ एम ए जेएटलमैन, मैं जो कहूँगा—वह पत्थर की लकीर होगी । बट, वह छोकरा कौन है ?”

“कौन छोकरा ?”

“वही जो उस दिन तुम्हारे पास आया था ?”

राधा ने भूल जाने का अभिनय किया—फिर एकाएक याद आने पर नाट्य करते हुए कहा—“ओह वह, पसन्द है वह तुमको !”

“पसन्द, कहीं ठोक न दूँ मैं उसे । छोटा आदमी देहाती उजबक ।”

“यह उजबक क्या हुआ भाई, तुम तो ऐसे ऐसे नये निराले शब्द इस्तेमाल करते हो कि अक्ल चकरा जाती है ।”

“आई वण्डर, आखिर तुमने कालिज में पढ़ा क्या है ? सिफ किताबें रटकर पास हुई हो, मगर जनरल नालेज कुछ और चीज है ।”

“ठीक कहते हो माधव ! अच्छा कहो, पास होने की मिठाई तो जरूर खिला-आगे । सात-सात साल हो गए आस लगाये ।”

“बानक ही ऐसा बन जाता है कि हमेशा एक आँच की कसर रह जाती है ।

“लेकिन इस बार ।”

“इस बार, परसों मुन लेना ।”

“तो दावत पक्की रही, सहेलियों से कह रखूँ ?”

“कह रखो, दावत इकट्ठी होगी, पास होने की और शादी की भी ।”

“ऐं शादी की ?”

“शादी किसकी ?”

“यह अपने दिल से पूछो ।” माधव इस प्रकार मुस्कराने लगा—जैसे कोई जबरदस्त बात कह दी हो ।

राधा ने आँखें बन्द करके, दोनों हाथों में पक्की हुई पुस्तक को छाती से लगाकर कहा—

“कह रे दिल कह ।”

“कुछ कहा ?”

“न ।”

माधव जोर से हँसकर ज़रा और खसककर राधा के पास आ बैठा । उसने कहा—“तुम जानती हो राधा, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ ?”

“बहुत करते हो, बहुत से भी बहुत ।”

“और तुम ?”

“मैं तो उससे भी बहुत ।”

“बस यही काफी है, मौसी भी जानती हैं । बस राधा, रिजल्ट आउट होते ही समझी, लेकिन मौसी सब ठीक कर लेंगी । हाँ, अब मैं चला । परसों रिजल्ट मुनने जाना है । दर्जी नामाकूल से कह आऊँ—फाइडे की शाम को सूट न दिया

तो उसकी दुकान में आग लगा दूँगा ।”

उसने एक नया सिगरेट सुलगाया और हाथ हिलाकर टा... टा... कहा तथा हँसता हुआ चला गया। राधा कुछ देर सोचती रही, फिर उसने हँसकर अपनी पुस्तक खोली। तक्रिया पास खसकाया और उसपर शरीर का बोझ डाल पुस्तक पढ़ने में डूब गई।

शनिवार के दिन सुबह जब पिता को चाय पिलाकर राधा ट्रे लेकर जाने लगी तो सिन्हा साहब कहने लगे—“आज तुम्हें थोड़ी फुरसत होगी तो बेटी, दोपहर बाद तीन बजे।”

“तीन बजे?”

“हाँ बेटी, कचहरी से आज मैं दो बजे ही आ जाऊँगा।”

“अच्छी बात है, बाबू जी।”

“तो तू तीन बजे यहीं लायब्रेरी में आ जाना।”

“जी।” राधा के मुँह पर एक उत्सुकता आई। वह कुछ पूछने को ज़रा ठिठकी, पर फिर ट्रे लेकर चली गई।

सिन्हा साहब गम्भीरतापूर्वक कुछ सोचते हुए सिगार का धुँआ उड़ाते रहे। फिर उन्होंने घड़ी की ओर देखा। नौ बज रहे थे। उन्होंने कुछ ज़रूरी कागज़ात देखे और कपड़े पहन उन्होंने सोफ़र को आवाज़ दी। सोफ़र के आने पर उससे उन्होंने गाड़ी ले आने को कहा। फिर वे बराण्डे में टहलने लगे। अपनी उलझनें वे स्वयं ही सुलझाने में व्यस्त थे। गाड़ी आने पर वे पहले बैंक गये। फिर होस्टल में ब्रज से जाकर कहा कि साढ़े तीन बजे वह तैयार रहे, कहीं जाय नहीं। इसके बाद वे निश्चिन्त होकर कचहरी गये। जब दो बजे लौटे तो उनके साथ बहुत से बण्डल थे। बाज़ार से उन्होंने बहुत-सी चीज़ें ख़रीद की थीं।

राधा लाइब्रेरी में बैठी कोई मेगज़ीन पढ़ रही थी। पिता जी को देखकर वह एकदम उठ खड़ी हुई। उसने कहा—“आ गए बाबू जी, क्या चाय लाऊँ?”

“चाय नहीं बेटी, झटपट तैयार हो जा। इस बण्डल में साड़ी है, वह पहन ले।”

राधा ने कुछ आश्चर्य-भरी दृष्टि से पिता की ओर देखा और बक्स को खोला। कीमती आसमानी रंग की ज़रीदार साड़ी थी। उसने फिर पिता की ओर देखकर काँपते कण्ठ से कहा—“यह साड़ी पहननी होगी, बाबू जी?”

“हाँ, हाँ, मगर जल्दी कर, देर हो रही है। बाथ-रूम में चली जा!”

राधा बक्स लेकर बाथ-रूम में चली गई। और नई साड़ी-ब्लाउज में सज कर आ खड़ी हुई। क्षण-भर पुत्री की सुपमा मुग्ध नयनों से सिनहा साहब देखते रहे। आँख की एक कोर गीली हुई। पर उन्होंने संयत होकर दूसरा बक्स खोला। उसमें एक जोड़ा जड़ाऊ कड़े, नेकलेस और एक कीमती अँगूठी भी थी। उन्होंने कम्पित स्वर से कहा—“इन्हें भी पहन ले!”

“बात क्या है बाबू जी?”

“तेरी माँ नहीं है बेटी, आज तुम अपने हाथ ही अपना शृङ्गार करना पड़ेगा। उनकी आँखों से दो मोती टपक पड़े। राधा कुछ-कुछ समझ गई। उसने गहने यथास्थान पहन लिए।

सिनहा साहब ने एक बारगी ही कुर्सी से उठकर कहा—“तीन हो गए, चलो अब चलें। अन्नपूर्णा सो रही है न?”

“हाँ बाबू जी, क्या बुलाऊँ?”

“नहीं बेटी।”

पिता-पुत्री दोनों गाड़ी में जा बैठे। गाड़ी ने होस्टल की राह ली। ब्रज प्रतीक्षा कर रहा था। सिनहा साहब ने जल्दी-जल्दी एक बगडल उसे देते हुए कहा—“ब्रज, यह सूट तो पहन लो। मगर जल्दी करो, सिर्फ दस मिनट—समझे।”

ब्रज ने भाँककर गाड़ी में बैठी राधा को देखा। एक बार उसने भी सिनहा साहब की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा, परन्तु और प्रश्न नहीं किया। एक ओर जाकर सूट पहन लिया।

अब गाड़ी सीधी डिप्टी कमिश्नर के बँगले की तरफ चल दी। वहाँ सिनहा साहब की की हुई सारी ही व्यवस्था पहले ही से तैयार थी। पाँच ही मिनट में सिविल कानून के अनुसार दोनों का विवाह हो गया। ब्रज और राधा परस्पर

तो उसकी दुकान में आग लगा दूँगा ।”

उसने एक नया सिगरेट सुलगाया और हाथ हिलाकर टा... टा... कहा तथा हँसता हुआ चला गया। राधा कुछ देर सोचती रही, फिर उसने हँसकर अपनी पुस्तक खोली। तक्रिया पास खसकाया और उसपर शरीर का बोझ डाल पुस्तक पढ़ने में डूब गई।

शनिवार के दिन सुबह जब पिता को चाय पिलाकर राधा ट्रे लेकर जाने लगी तो सिन्हा साहब कहने लगे—“आज तुम्हें थोड़ी फुरसत होगी तो बेटी, दोपहर बाद तीन बजे।”

“तीन बजे?”

“हाँ बेटी, कचहरी से आज मैं दो बजे ही आ जाऊँगा।”

“अच्छी बात है, बाबू जी।”

“तो तू तीन बजे यहीं लायब्रेरी में आ जाना।”

“जी।” राधा के मुँह पर एक उत्सुकता आई। वह कुछ पूछने को ज़रा ठिठकी, पर फिर ट्रे लेकर चली गई।

सिन्हा साहब गम्भीरतापूर्वक कुछ सोचते हुए सिगार का धुँआ उड़ाते रहे। फिर उन्होंने घड़ी की ओर देखा। नौ बज रहे थे। उन्होंने कुछ ज़रूरी कागज़ात, देखे और कपड़े पहन उन्होंने सोफ़र को आवाज़ दी। सोफ़र के आने पर उससे उन्होंने गाड़ी ले आने को कहा। फिर वे बराण्डे में टहलने लगे। अपनी उलझनें वे स्वयं ही सुलझाने में व्यस्त थे। गाड़ी आने पर वे पहले बँक गये। फिर होस्टल में ब्रज से जाकर कहा कि साढ़े तीन बजे वह तैयार रहे, कहीं जाय नहीं। इसके बाद वे निश्चिन्त होकर कचहरी गये। जब दो बजे लौटे तो उनके साथ बहुत से बण्डल थे। बाज़ार से उन्होंने बहुत-सी चीज़ें ख़रीद की थीं।

राधा लाइब्रेरी में बैठी कोई मेगज़ीन पढ़ रही थी। पिता जी को देखकर वह एकदम उठ खड़ी हुई। उसने कहा—“आ गए बाबू जी, क्या चाय लाऊँ?”

“चाय नहीं बेटी, फ़्रैप्पट तैयार हो जा। इस बण्डल में साड़ी है, वह पहन ले।”

राधा ने कुछ आश्चर्य-भरी दृष्टि से पिता की ओर देखा और बक्स को खोला। कीमती आसमानी रंग की ज़रीदार साड़ी थी। उसने फिर पिता की ओर देखकर काँपते कण्ठ से कहा—“यह साड़ी पहननी होगी, बाबू जी?”

“हाँ, हाँ, मगर जल्दी कर, देर हो रही है। बाथ-रूम में चली जा!”

राधा बक्स लेकर बाथ-रूम में चली गई। और नई साड़ी-ब्लाउज में सज कर आ खड़ी हुई। क्षण-भर पुत्री की सुपमा मुग्ध नयनों से सिनहा साहब देखते रहे। अखि की एक कोर गीली हुई। पर उन्होंने संयत होकर दूसरा बक्स खोला। उसमें एक जोड़ा जड़ाऊ कड़े, नेकलेस और एक कीमती अँगूठी भी थी। उन्होंने कम्पित स्वर से कहा—“इन्हें भी पहन ले!”

“बात क्या है बाबू जी?”

“तेरी माँ नहीं है बेटी, आज तुझे अपने हाथ ही अपना शृङ्गार करना पड़ेगा। उनकी आँखों से दो मोती टपक पड़े। राधा कुछ-कुछ समझ गई। उसने गहने यथास्थान पहन लिए।

सिनहा साहब ने एक वारगी ही कुर्सी से उठकर कहा—“तीन हो गए, चलो अब चलें। अन्नपूर्णा सो रही है न?”

“हाँ बाबू जी, क्या बुलाऊँ?”

“नहीं बेटी।”

पिता-पुत्री दोनों गाड़ी में जा बैठे। गाड़ी ने होस्टल की राह ली। ब्रज प्रतीक्षा कर रहा था। सिनहा साहब ने जल्दी-जल्दी एक बगडल उसे देते हुए कहा—“ब्रज, यह सूट तो पहन लो। मगर जल्दी करो, सिर्फ दस मिनिट—समझे।”

ब्रज ने भाँककर गाड़ी में बैठी राधा को देखा। एक बार उसने भी सिनहा साहब की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा, परन्तु और प्रश्न नहीं किया। एक ओर जाकर सूट पहन लिया।

अब गाड़ी सीधी डिण्टी कमिश्नर के बँगले की तरफ चल दी। वहाँ सिनहा साहब की की हुई सारी ही व्यवस्था पहले ही से तैयार थी। पाँच ही मिनिट में सिविल कानून के अनुसार दोनों का विवाह हो गया। ब्रज और राधा परस्पर

पति-पत्नी के बंधन में बंध गए। दोनों ने सिनहा साहब के चरण छुए। वापसी में ब्रजराज को उन्होंने होस्टल में छोड़ दिया। राधा ने घर आकर भटपट कपड़े बदलकर पिता की चाय तैयार की। इस अद्भुत जोड़ी का यह अद्भुत विवाह ऐसा चुपचाप शान्त भाव से हो गया कि पता तक न खड़का, किसी को पता तक न लगा।

चाय पीकर सिनहा साहब ने कहा—बेटी, कल पार्टी का इतजाम अब तू ही कर। सिर्फ़ ख़ाम-ख़ास अपने ही निजी मित्रों-बान्धवों को बुलाना है। यह लिस्ट है। मैंने कुछ नाम लिख दिए हैं। अपनी सहेलियों की भी लिस्ट बना ले। अन्नपूर्णा और माधव तेरी मदद करेंगे, और लोग भी हैं। लेकिन मैं आज एक ज़रूरी केस में व्यस्त रहूँगा। कल भी दोपहर तक फ़ुरमत नहीं मिलेगी। हाँ, सौ आदमियों के लिए चाय पानी का आर्डर मैंने “सिलवर नाइट” को दे दिया है। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। टेबुल कुर्सी वे ही सब ले आयेंगे। हाँ, सुबह बड़े लान की ज़रा सफ़ाई करा लेना।”

“लेकिन बाबू जी, पार्टी का उद्देश्य क्या लिखूँ?” राधा ने लज्जा से मुस्कराते हुए कहा।

“जो तेरे जी में आये वही लिख दे। जब सब काम चुपचाप हुआ है तो अभी चुप ही रहें। कल डिक्लेयर कर दिया जायगा। न हो, ब्रज को बुला लेना। दोनों अपनी गाड़ियाँ तो हैं ही। मेरा ख़याल है, दो गाड़ियाँ और आ जायेंगी। मैंने गुप्ता साहब को कचहरी में कह दिया था।”

राधा अपने कमरे में जाकर सब बातों पर विचार करने लगी। अपने पिता के विशाल हृदय की बात विचारकर वह आनन्द से गद्गद् हो गई। आनन्द के आँसू बहाती हुई वह बड़ी देर तक चुपचाप पड़ी रही।

मौसी को तनिक भी सन्देह न था। वह उसी भाँति चाबी का गुच्छा साड़ी में बाँधे अपनी गोल-गोल आँखें घुमाती-फिराती अपनी गृहस्थी के काम में लगी थी। आज उसकी खुशी का पारावार न था क्योंकि माधव छः बार मैट्रिक की परीक्षा में फेल होकर सातवीं बार, इस बार पास हो गया था।

व्यस्त भाव से माधव ने आकर अखबार राधा पर फेंककर कहा—“लो भई,

देख लो जो देखना है ।”

राधा ने हँसते हुए कहा—“लेकिन मैं तो पहले ही सुन चुकी हूँ ।”

तो अब खाओ, जितनी मिठाई खानी है ।”

“यों काम नहीं चलेगा बाबू, पार्टी देनी होगी, ग्रान्ड पार्टी ।”

“पार्टी ही दो फिर ।”

अब दोनों आदमी मिलकर बड़े जोशो-खरोश से पार्टी के प्रबन्ध में जुट गए । कार्ड छुपाए गए, हाथों-हाथ-पते लिखे गए, रातों-रात, और भोर होते ही । माधव स्वयं घर-घर जाकर मोटर में बैठकर कार्ड बाँट आया । वह बहुत खुश था । दोपहर बीतने पर वह लौटा तो उसने चिंतित स्वर में कहा—“राधा, एक षड़ी गलती हो गई ।”

“वह क्या ?”

“कार्ड में यह तो लिखा ही नहीं कि पार्टी किसलिए दी गई ।”

“धुन, ऐसी बातें कहीं लिखी जाती हैं ?” राधा ने नटखटपन से कहा । माधव खिलखिलाकर हँस पड़ा । उसने कहा —“आल राइट, ठीक है, ठीक है । लिखने की क्या जरूरत है ?”

१६

सिनहा साहब की कोठी के बड़े लॉन में भोज का आयोजन था । छोटी-छोटी टेबलों पर रंगीन तितलियों की भाँति सजी-धजी लेडियाँ और सूट-बूट से लैस सभ्य पुरुष डटे थे । टेबल पर अनेक भारतीय और अन्धभारतीय खाद्य-सामग्री सैण्डविच, पेस्ट्री, दाल मोठ, समोसा और चाय सजी थी । लोग अपनी-अपनी गुट में धीरे-धीरे गप्पें उड़ा रहे थे और नाश्ता हलक से उतार रहे थे । अष्ट-मण्डल दल ने मनोरंजन के विविध प्रोग्राम बनाए थे । सिलवर नाइट के चैरा खानसामा दौड़-दौड़कर अतिथियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे थे । सिनहा साहब और अन्नपूर्णा देवी चारों ओर घूम-घूमकर अतिथियों का सत्कार-आवभगत कर रहे थे । अन्नपूर्णा मौसी इस समय ठीक गृहस्वामिनी की रिमा धारण किये हुए थी ।

एक बड़े से टेबुल को घेरकर अष्ट मंगल-दल बैठा था। टेबुल पर ढेर सामान सजा था। तश्तियों का दल इन तितलियों के चारों ओर मण्डरा रहा था। एक टेबुल के एक कोने पर ब्रज चुपचाप बैठा—कभी-कभी चाय की चुस्की ले रहा था। वह जैसे अपने ही से अपने-आपको छुपा रहा था। सच पूछा जाय तो उस भीड़-भाड़ में उसकी ओर किसी का ध्यान ही न था।

इसी समय माधव खूब बढ़िया सिल्क का सूट पहने, हँसता हुआ अष्ट मण्डल की टेबुल पर आ खड़ा हुआ। उसने बनावटी अदब से भुक्ककर कहा—
“आइए, गुड ईवनिंग, आप लोग सब यहाँ जमा हैं, शायद हम लोगों से दूर-ही-दूर रहने का इरादा है।”

पद्मा ने कनखियों से राधा को देखा—फिर मुस्कराकर कहा—“नहीं-नहीं, आप चाहें तो आप हमारे साथ बैठकर हमारी प्रतिष्ठा बढ़ा सकते हैं।”

“थैंक यू” कहकर माधव एक कुर्सी पर डट गया। राधा ने मुस्कराकर चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ाया—पद्मा ने दाल मोठ की प्लेट और शशिमणि ने मिठाई की तश्तरी आगे बढ़ाई।

लेकिन माधव ने एक गम्भीर मुस्कराहट के साथ सब को अंग्रेज़ी में धन्यवाद देकर सिर्फ चाय का प्याला ही हाथ में ले लिया। इस पर मिस पद्मा ने बनावटी क्रोध से कहा—“आप तो बड़े प्राऊड मालूम होते हैं सर।”

माधव ने कपार पर आँखें चढ़ाकर खूब विस्मय का भाव मुँह पर लाकर कहा—“यह आपने क्या कहा -- मिस !”

“क्या यह आपका सरासर पक्षपात नहीं है कि हमारी पेश की हुई दालमोठ की ओर आपने आँख उठाकर भी न देखा”—और राधा का प्याला चट से ले लिया। “यह तो मैं भी बर्दाश्त न करूँगी, मेरी पेश की हुई मिठाई की प्लेट भी आपने ठुकरा दी।”

“ओह, आपने इतनी-सी बात का खयाल कर लिया, लाइए अब दे दीजिए।”

“यस रहने दीजिए—राधा ही आपको देगी।”

“आप शायद नाराज हो गईं !”

“तो आपकी बला से ।” पद्मा ने खूब गुस्से का भाव दिखाकर कहा—
“और यह जुल्म तो देखिए—हमें नाराज होने का भी अधिकार नहीं ।”

“आपको अधिकार है मिस पद्मा, पूरा अधिकार है ।”

“रहने दीजिए, यह सब झूठी बातें हैं । चलो बहनो, हम दूसरी जगह चलकर बैठें, यहाँ हमारा घोर इन्सल्ट हो गया ।” पद्मा मुँह फुलाकर उठने लगी ।

रुक्मिणी ने नकली गम्भीरता से कहा—“जाओ मत बहन, मिस्टर माधव अभी तुमसे माफी माँग लेंगे ।”

“यस, यस,आई एम सारी—वैरी सारी ।” माधव ने खूब अधिक झुककर और खड़े होकर कहा ।

“मैं तो माफ कर नहीं सकती ।”

“और मैं भी ।” पद्मा और शशिमणि एकदम रूठ गईं ।

राधा ने जरा बंकिम कटाक्ष से उन्हें देख और कुटिल हास्य होठों पर लाकर कहा—“तुम लोग मुझसे जलती हो बहन !”

“हाँ, हाँ, जलती हैं ।”

“प्लीज, प्लीज, आप लोग झगड़ा मत कीजिए, माधव ने हाथ जोड़कर कहा ।

“तो हम एक शर्त पर सुलह कर सकती हैं ।”

“वह शर्त मुझे मंजूर है ।”

“वाह, बिना ही सुने स्वीकार कर ली ।”

“अच्छा, कहिए भी ।”

“आपको राधा के साथ डान्स करना होगा ।”

“डान्स ?” माधव ने घबराकर कहा । डान्स के मामले में वह अनाड़ी था ।

“बस हमारी एक ही शर्त है ।” पद्मा ने होठ फुला कर कहा ।

“बड़ा जुल्म है मिस पद्मा, सजा कुछ नरम कर दीजिए ।”

“तब इसमें एक तरमीम भी हो सकती है !”

“क्या ?”

“वह उस टेबुल पर जो गुम-सुम महाशय अकेले बैठे हैं, उन्हें अपनी जगह राधा के साथ नाचने पर राजी कर दीजिए।” पद्मा ने नटखटपन से सामने बैठे ब्रज की ओर उँगली उठाकर कहा। *

माधव ने भौंह सिकोड़कर ब्रज की ओर देखा। फिर कहा—“कौन है यह जाँगलू, एक दम देहाती बागड़विल्ला। राधा इसके साथ डान्स नहीं कर सकती, सारी, वैरी सारी।”

“तो फिर आप कीजिए डान्स। नहीं तो हम जाती हैं।”

“आप कुछ सोचिए मिस पद्मा ?”

“आपने जब हमारी इन्सल्ट की थी तब सोचा था।”

“आप बड़ी जालिम हैं मिस, अच्छा राधा क्या उसके साथ डान्स करेंगी ?”

“जरूर करेंगी।”

“वह कहें तो मानूँ।”

“माधव के लिए तो मैं सब-कुछ कर सकती हूँ।”

“लो अब सुन लिया ? जाइए, अब उस दहकानी को पकड़कर यहाँ ले आइए।”

माधव ने राधा की ओर देखा, राधा ने मुस्कराकर स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। मूर्ख माधव ब्रज के पास पहुँचा। पास बैठकर उसने बात की।

“आप यहाँ अकेले कैसे बैठे हैं मिस्टर ?”

“अकेला कहाँ हूँ, चाय का प्याला भी मेरे साथ है।”

“अच्छा, यह आपका साथी है, आपका शुभ नाम ?”

“ब्रज।”

“ब्रज ? जरा-सा नम है, पर खूब टेढ़ा है। खैर, तो आप जरा उस टेबुल तक तशरीफ़ ले चलिये।” संकेत किया।

ब्रज ने उधर देखा। फिर कहा—“क्यों ?”

“वहाँ, आपकी तलबी है।”

“किसलिए ?”

“यह वहीं चलकर पूछिए।”

“आप कौन हैं ?”

“मैं माधव हूँ ।”

“ओह, नमस्कार !” ब्रज ने खड़े होकर हाथ जोड़े ।

“गुड ईवनिंग, तो आप मुझे जानते हैं ?”

“जी हाँ, कुमा करके आप बैठ जाइए, राधा ने बहुत बार आपकी बात की है ।”

“राधा ने ? क्या उससे आपका परिचय है ?”

“कुछ कुछ” ब्रज मुस्कराया ।

माधव ने कहा—“हाँ, मुझे याद आया, आपको मैंने एक दिन उसके साथ देखा था । मगर अब आप राधा के साथ डान्स करने को तैयार हो जाइए ।”

“क्या डान्स ?”

“यही हुकम है, आइये ।”

दोनों ‘अष्टमङ्गल’ दल में आ पहुँचे ।

इसी समय सिनहा साहब धीरे से अपनी टेबुल पर उठ खड़े हुए । उन्होंने जलद-गम्भीर स्वर से कहा—“सज्जनो और देविथो ! आज के शुभ दिवस पर आपने मेरे यहाँ पधारकर जो मुझे और मेरी पुत्री राधा को प्रतष्ठा प्रदान की है, उसके लिए हम लोग—मैं और मेरी पुत्री राधा—आप सबकी बहुत-बहुत आभारी हैं । अब मुझे आपसे यह निवेदन करना है कि यह छोटा-सा समारोह मेरी पुत्री राधा और आयुष्मान ब्रजराज के शुभ विवाह के उपलक्ष्य में हुआ है । जिसका अनुष्ठान कल शुभ दिन में विलकुल सादगी के साथ सिविल-मैरिज संविधान द्वारा सम्पन्न हो चुका है । अब मेरी आपसे नम्र विनती है कि आप नव-दम्पति को अपने शुभाशीर्वाद से सम्पन्न करें ।”

सिनहा साहब आगे बढ़े । उन्होंने ज और राधा का हाथ पकड़कर खड़ा किया । उपस्थित जनों ने हर्ष-नाद तथा तालियाँ बजाकर वर-वधू का अभिनन्दन किया । केवल दो व्यक्ति ऐसे थे जो मूक जड़ रह गए । एक अन्ना मौसी दूसरा माधव । मौसी बड़े-बड़े तालों के चश्मे से धूर-धूरकर क्रोध से गाल फुलाकर कभी वर-वधू को और कभी सिनहा साहब को देखने लगी । उस दृष्टि का अभि-

प्रायः था—कि ऐसी प्रवृत्ति विश्वासघात की बात क्या सम्भव हो सकती है ! परन्तु माधव बिल्कुल ही बौखला रहा था, वह हिन्दी और अंग्रेजी के मिश्रण में एक अटपटी भाषा में अपना दार्शनिक अविश्वास प्रकट कर रहा था ।

परन्तु किसी का भी इधर ध्यान न था । लोग हर्षोन्माद में तन्मय होकर परस्पर बातचीत करते, खा पी रहे थे । अलवत्ता अष्टमङ्गल-दल के लिए माधव का सान्निध्य अत्यन्त आनन्द प्रद था । और वह दल इस अवसर पर उससे अधिक-से-अधिक आनन्द तथा मनोरंजन की उपलब्धि कर रहा था ।

१७

राज ने इस विवाह-समारोह में भाग नहीं लिया । उसे राधा सूचना भी न दे पाई । परन्तु जब राधा ने सब हकीकत राज को लिख भेजी तो सिन्हा साहेब की शालीनता पर राज ने खूब आनन्द के आसू बहाये । पत्र के उत्तर में उसने राधा को केवल एक ही पंक्ति लिखी । उसने लिखा—“राधा, मेरी ओर से बाबू जी के चरण चूम लेना ।” और एक दिन, राज का पत्र पाने के बाद राधा ने जब चाय की ट्रे सिन्हा साहेब के सम्मुख रखकर सच-सच उनके चरणों पर अपने गर्म-गर्म गरिमाय्य ओंठ लगा दिए तो सिन्हा साहेब ने एकदम असंयत होकर कहा—“हैं, हैं, यह क्या करती है राधा ? तब राधा ने आँसुओं से अंधी होकर राज का खत उन्हें थमा दिया । और राज की गुण-गरिमा-तपस्या और कर्मठ जीवन का बार-बार बखान दिया । सिन्हा साहेब बोले नहीं, पुत्री के सामने आँखें गीली भी न कर सके, केवल वह पत्र उन्होंने एक बहुमूल्य निधि की भाँति कोट की भीतरी जेब में रख लिया । पिता-पुत्री में पत्र को लेकर कुछ बात भी नहीं हुई । दोनों ही एक अनिर्वचनीय आनन्द और तृप्ति की अनुभूति से भर गए ।

परन्तु उसी सन्ध्या को ब्रज के साथ राधा की बात हुई । राधा ने कहा—“राज ने हमें आशीर्वाद भी नहीं दिया ।”

ब्रज ने कहा—“राधा, राज तो बाबू जी के महान् पितृदेवत्व की सम्पदा से सम्पन्न हो गई । उसने तुम्हारे द्वारा उनके चरणों को चूमकर अपने हृदय की सारी ही पूजा, सारा ही आनन्द विसर्जन कर दिया । और जब यह काम

तुम्हारे द्वारा हुआ तो मुझे और तुम्हें राज ने सब कुछ दे दिया। सच कहूँ, राज ने हमें निहाल तो पहले ही कर दिया था। अब इस पत्र द्वारा तो जैसे हमने हमें पवित्र कर दिया।”

“और बाबू जी ?” वे एक शब्द भी तो नहीं बोले। वह पत्र उन्होंने चुपचाप अपने कोट के भीतरी पाकेट में रख लिया।”

“क्यों न रखें ? उनके देवत्व को जिस महाप्राण ने पहिचाना-समझा उसका प्रसाद क्या साधारण है ? वह तो बाबू जी के लिये अमूल्य निधि बन गई !”

“परन्तु यदि एक बार हम राज के पास चलें, जाकर आशीर्वाद की याचना करें।”

राधा ने उत्सुक नेत्रों से ब्रज की ओर देखकर कहा।

“तो यह हमारा एक अतिशय कठोर और स्वार्थपूर्ण कार्य होगा। तुम क्या समझती हो राधा ! क्या राज ने स्वेच्छा से जिस दुःख के पहाड़ को उठाकर अपने सिर पर लादा है, उससे हम अपने उस सुख की तुलना करने उसके संमुख जायें जो उमी का था और जिसे उसने अनायास ही हमें दे दिया। क्या यह उचित होगा, क्या तुम राज को देख सकोगी ? उस दुःख के समुद्र में स्थिर समाधिस्थ बैठी हुई को ? नहीं, नहीं, मैं तो न देख सकूँगा, नहीं देख सकूँगा।”

राधा की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—“तो फिर हम राज को कभी न देख सकेंगे ?”

“भगवान् को क्या भक्त लोग देख सकते हैं ? उनका काम तो उसकी पूजा करते रहना—भक्ति-भाव से उसका नाम स्मरण करना ही है।”

“परन्तु दर्शनों की अभिलाषा तो वे भी रखते ही हैं।”

“तुम भी अभिलाषा रखो राधा, कौन रोकता है जब भगवान् प्रसन्न हों, जब उनकी इच्छा हो दर्शन दें। दर्शनों के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।”

राधा चुपचाप आँसू बहाती रही। ब्रज भी किसी गहन चिन्तना में लीन गए। एकाएक राधा ने कहा—“अच्छा, अब उस दहेज का क्या होगा ? मैं

तो उसे अपने काम में ला नहीं सकते।”

“इसके सम्बन्ध में तो बाबू जी ही निर्णय करेंगे। वे जैसा ठीक समझें।”

और जब राधा और ब्रज ने सिनहा साहब के पास जाकर दहेज की जिज्ञासा उपस्थित की तो उन्होंने कहा—“मैंने निर्णय कर लिया है मेरे बच्चों, केवल यह मकान ही मैं तुम लोगों को दूँगा, शेष अपनी सब संपत्ति भी मैंने उसी दहेज की निधि में जोड़ दी है, तुम लोग सुशिक्षित हो, बुद्धिमान् हो, अपने जीवन-निर्वाह में समर्थ हो, तुम्हें मैं आशीर्वाद देता हूँ कि अपने सत्कर्म और परिश्रम से अपने जीवन को सुखी बनाओ, यह धन मैं स्त्रियों की सामाजिक दासता को दूर करने में खर्च करूँगा, साथ ही अपना अवशेष जीवन भी।”

ब्रज ने कहा—“बाबूजी, क्या आप इस सत्कर्म में हमें साथ नहीं ले सकेंगे? हम लोग आपके अनुगत होकर कार्य करेंगे।”

“पुण्य करने से कौन किसे रोक सकता है बेटे, तुम लोग खुशी से अपना जीवन यदि इस कार्य के लिये अर्पण करोगे तो मैं तुम्हारा अभिनन्दन करूँगा, हम पुरुषों ने ही समाज का नेता बनकर स्त्रियों की दासता की सृष्टि की है। स्त्रियों को समाज में हीन बनाया है। अब पुरुष ही अपने युग-युग के पाप का प्रायश्चित्त करें तो इससे बढ़कर पुण्य क्या है?”

“क्या मैं भी कुछ काम आ सकती हूँ, बाबू जी?”

“क्यों नहीं बेटी? तुम्हारे सामने तो राज का आदर्श है। उसने जो तप करना ठाना है, वह तो तुम्हारी जैसी बेटियों को मार्ग दिखाने ही के लिए है। पुरुष कितने ही उदार बनें, स्त्रियों की गुलामी का अन्त नहीं कर सकते, जब तक स्त्रियाँ स्वयं इसके लिए कटिबद्ध न हों।”

“तो बाबू जी, मैं इसके लिए अपना जीवन अर्पण करती हूँ।”

“और मैं भी बाबू जी।”

“तुम्हारा स्वागत, मेरे बच्चों, ऐसा ही करो। परन्तु अभी तुम्हारी नई गृहस्थी है, पहले इसकी व्यवस्था कर लो, पीछे पुण्य कर्म। मैं तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करूँगा।”

सिनहा साहब ने दोनों को छाती से लगा लिया। तीनों महाप्राण इस शुभ मुहूर्त में एक शुभ अनुष्ठान से अभिभूत हो गए।

१८

राज का वह छोटा-सा सत्याग्रह उस देहाती इलाके में एक अच्छा खासा चर्चा का विषय बन गया। राज के विषय में लोगों की जिज्ञासा जाग उठी। ठाकुर की डिग्री के मूल्य पर उसके विवाह का निर्णय, दहेज का दान और इन सबके भीतर जो-जो मामले थे। वे हजार-हजार रूप धारण करके घर-घर की चर्चा का विषय बन गए। सभी लोग राज के सत्साहस की सराहना करने लगे। उसके व्यक्तित्व की भी लोगों ने भाँति-भाँति की कल्पना कर ली। स्त्रियों में राज ही नहीं, राज के मूल विषय, दहेज, स्त्रियों की पराधीनता दासता आदि भी चर्चा का विषय बन गए। गाँव की स्त्रियाँ अपनी मौलिक पद्धति पर इन विषयों पर विवाद करने लगीं। गाँव में जीवन की एक नई हवा स्त्रियों में उत्पन्न हो गई। गाँव के तरुणों में कुछ शिक्षित थे। उनका नेता रघुनन्दन था और उस पर गाँव के मुकद्दम जयरामसिंह और पण्डित नारायण शर्मा थे। इन सबने राज की यशो-गाथा दूर-दूर के गाँवों तक पहुँचा दी। बड़े ठाकुर की पुत्र-वधू होने तथा बड़े ठाकुर का मान-मर्दन करने के कारण यह चर्चा और भी गुरु गरिमा धारण कर गई।

राज ने अपना सत्याग्रह आशिक रूप में कायम रखा। अनशन केवल श्वसुर की गाली ही के प्रतिकार में किया था—सो ठाकुर के क्षमा-याचना करने पर भंग कर दिया गया। पर ठाकुर ने जो राज के हाथ का भोजन नहीं किया इसके लिए उसने अपना सत्याग्रह जारी रखा। उसने ठाकुर की हवेली का अन्न ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। अपने लिए भोजन की व्यवस्था उसने स्वयं ही अपने धन से की। इस सम्बन्ध में भी श्वसुर से उसकी कुछ कम हुज्जत नहीं हुई। बड़े ठाकुर का अब वह तेज नहीं रह गया था। उन्होंने राज की कोठरी के द्वार पर आकर कहा—“यह क्या बात है बहू, तू चौके में भोजन नहीं करती, अलग बनाती है; और अपने खर्च से सामान जुटाती है?”

राज ने कहा—“पिताजी, चौके का भोजन इसलिए ग्रहण नहीं करती कि वहाँ आप भोजन करते हैं—आप मेरा लुआ नहीं खाते—मैं आपका लुआ भी

नहीं खा सकती — आपकी जहाँ छाया पड़े वहाँ भी नहीं खा सकती। इसी से अलग बना लेनी हूँ। अपने खर्चे से इसलिए जुटाती हूँ कि अभी मुझे बहू की भाँति मर्यादापूर्वक नहीं ग्रहण किया गया है। मैं आपके परिवार की सदस्या नहीं बन पाई हूँ। आपके पुत्र मुझे अपने ऋण के बदले में क्रीता समझते हैं, और आप मुझे अपने लिए अस्पृश्य ! मेरी गैरत यह स्वीकार नहीं करती कि मैं आपका अन्न इन परिस्थितियों में ग्रहण करूँ। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की दासता का सबसे बड़ा रूप उनकी आर्थिक दासता ही है। वे स्वयं कमाती-धमाती नहीं। पति की कमाई घर में आराम से बैठकर खाती हैं। धन पति कमाता है, इसीसे वह घर-बार का जैसे स्वामी है, वैसे ही पत्नी का भी। वह जब उसे नाराज होकर घर से निकाल सकता है, उसे उसकी कमाई पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे स्त्री इतनी निरुपाय हो जाती है कि पति के तथा पति के घर वालों के सभी अत्याचार चुपचाप उन्हें सहन करने पड़ते हैं, केवल इस अन्न के लिए।

“परन्तु, मैं तो यह परिस्थिति स्वीकार करती नहीं, मैं तो यह समझती हूँ कि स्त्री पति की अर्धाङ्गिनी और जीवन-संगिनी है। वह भी उसी भाँति उस घर की स्वामिनी है जैसे उसका पति है। दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं, स्त्री न बच्चा पैदा करने या पुरुषों के भोगने की वस्तु है, न आज्ञाकारिणी दासी है, ऐसा मेरा मन्तव्य है। यह मेरा मन्तव्य और दायित्व जब तक मेरे पति और पति के घर के लोग स्वीकार नहीं करते—मैं उनका अन्न नहीं स्वीकार कर सकती। मैं किसी भाँति पुरुषों की आर्थिक दासता स्वीकार नहीं करूँगी। परन्तु पिता जी, अपने इस अधिकार और मन्तव्य के लिए मैं आपको या आपके पुत्र को कुछ कष्ट नहीं दूँगी, न कोई भङ्गट खड़ा करूँगी, न कोई ऐसा काम करूँगी जिसमें आपको कष्ट हो, आपकी मर्यादा भंग हो या आप संकट में पड़ें। यदि आप मुझे चुपचाप मेरा कर्तव्य पालन करने देंगे, मेरे मार्ग में बाधा नहीं देंगे। बलात् आधीनता स्वीकार करना मैंने सीखा नहीं है।”

बूढ़े ठाकुर राज की बहुत-सी बात तो समझे ही नहीं। जो समझे—उससे उनकी उलझन बढ़ गई। परन्तु वे कोई तीखी बात न कह सके। उन्होंने कहा—

“तो बहू, यह क्या बदनामी की बात नहीं है कि मेरे घर की बहू अपने खर्चे से खाय ?”

राज ने कहा—“यह तो बहुत साधारण बात है पिता जी, यदि आप बदनामी ही का खयाल करते हैं तो बदनामी की बात तो यह है कि आपके घर की बहू को उसकी मर्यादा के अनुसार आदर-प्यार नहीं मिला। उसे अपनाया नहीं गया, उसे अपने परिवार में मिलाया नहीं गया। यह सब तो मेरा अपराध नहीं है। परन्तु इसके लिए मैं आप पर या आपके प्रेम पर कोई दावा नहीं करती, भगड़ा नहीं करती, आपसे कुछ मांगती नहीं, केवल मैं आपका अन्न-वस्त्र नहीं स्वीकार कर सकती और यह मेरी मर्यादा-प्रतिष्ठा और न्याय का प्रश्न है। मेरा अपना व्यक्तिगत नहीं, मेरी लाखों-करोड़ों बहनों का; जो चुपचाप भुसराल में वह अपमान और तिरस्कार सहती हुई आँसू बहाती रहती हैं—जिन्हें सहन करने से मैंने इन्कार कर दिया है।”

बड़े ठाकुर का धीरज जाता रहा। यह एक अनहोनी बात थी कि उनके घर की बहू की इतनी लम्बी जवान उन्हीं के सम्मुख चले। उन्होंने जरा रूखे होकर कहा—“तो बहू इस भगड़े-भँभट का क्या काम है ? नहीं, तू अपने पिता के घर चली जा, मैं गजराज को खत लिख दूँगा।”

“मैं पिता के घर नहीं जाऊँगी पिता जी, अपने ही घर में रहूँगी, इसीलिए मैं यहाँ आई हूँ। और, मेरे पिता जी को ऐसा पत्र लिखने का आपको अधिकार भी नहीं है।”

“तो इस घर में तो बहू बनकर रहना होगा, ढाई गज की तेरी जवान नहीं चलेगी।”

“जब आप मुझे बहू बनाकर रखेंगे तो यह ढाई गज की जवान भी न रहेगी। पर पिता जी, जैसे गाय चुपचाप कसाई की लुरी के आगे गरदन झुका देती है मैं उस जाति की लड़की नहीं हूँ। आप पुरुष हैं, बड़े हैं, पूज्य हैं, अधिकार और धन-सम्पन्न हैं। आप अपनी बहू को अपनायेंगे तो वह आपके कुल की आदर्श बहू बनकर रहेगी।”

“नहीं तो उपद्रव करेगी ?”

“उपद्रव कैसा ?”

“जैसा पाखण्ड नू करती है ।”

“पिता जी, आप फिर मर्यादा से बाहर भापा बोल रहे हैं !”

“अच्छा जाता हूँ, देखता हूँ, कब तक ...” बड़े ठाकुर क्रोध में बड़बड़ाते हुए चले गए ।

फिर बात नहीं हुई । दिन बीते, महीने बीते, तीन वर्ष बीत गए । समुर से राज की भेंट नहीं हुई, बात भी नहीं हुई । राज ने गाँव की स्त्रियों को शिक्षा देने का एक प्रकार का स्कूल ही हवेली में खोल दिया—ठाकुर ने बहुत हुज्जत की, बाधा दी । अंत में जब राज ने कहा कि “आप यदि इन स्त्रियों को मेरे पास आने और शिक्षा पाने से रोकेंगे तो मैं विवश बोकर उनके घर-घर जाकर उन्हें पढ़ाऊँगी । परन्तु आपकी हवेली में बहू के लिए पर्दे की मर्यादा है । पर्दे की वह आन मैं स्वीकार करूँगी, आप यदि मेरे काम में बाधा नहीं देंगे ।” ठाकुर कुछ डरकर और कुछ निरुपाय होकर चुप बैठ रहे । राज ने हवेली को शिक्षालय का रूप दे दिया । वह मुफ्त में स्त्रियों को शिक्षा नहीं देती थी, उनसे फीस लेती थी, फीस नकद नहीं लेती थी, उनसे कुछ घण्टे परिश्रम कराती थी, कपड़े सिलाती थी, कमीदा सिखाती थी और उसी की आमदनी से अपना और स्कूल का खर्चा चलाती थी । राज के इस स्कूल की मूल शिक्षा का उद्देश्य स्त्रियों को स्वावलम्बी बनाना, सुगृहिणी बनाना, माना के कर्तव्य सिखाना और स्वास्थ्य-रक्षा के नियम बताना था ।

गाँव की बहुत स्त्रियाँ और पुत्रियाँ राज के इस शिक्षालय में आने लगी । कुछ ने स्नातिका होकर अन्यत्र शाखाएँ खोल दीं । राज का नाम और काम बढ़ता ही गया । इतना होने पर भी राज ने पर्दे की मर्यादा की आन नहीं तोड़ी । वह हवेली से बाहर नहीं आई । किसी पुरुष ने राज की परछाई भी देखी नहीं ।

१६

इन तीन वर्षों में कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं । ठाकुर राघवेन्द्रसिंह केवल दो बार गाँव आए और केवल एक-एक दिन बाहरी बैठक में ठहरकर चले

गए। राज से उन्होने मुलाकात नहीं की। राज ने भी कभी उनसे मिलने की या उन्हें पत्र लिखने की चेष्टा नहीं की। किन्तु सुना कि उन्होंने किसी एक स्त्री से विवाह किया है। फिर सुना विवाह नहीं किया है यों ही रख लिया है। फिर सुना—उसे मार-पीटकर निकाल दिया है। राज ने इन समाचारों को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस बीच ठाकुर गजराजसिंह ने पुत्री को केवल दो पत्र लिखे, राज ने केवल कुशल-मङ्गल लिख दिया। ब्रज और राधा को उसने पत्र नहीं लिखा, उन्होंने भी नहीं लिखा। एक बार सिनहा साहब ने उसे पत्र लिखकर दहेज और अपने दान के सम्बन्ध में प्रस्तावित योजना से सहायता देने को राज को लिखा था। राज ने लिख दिया सब करने में अकेले आप ही समर्थ हैं फिर आपके पास ब्रज और राधा हैं। सिनहा साहब ने फिर उसे कष्ट नहीं दिया। इन तीन वर्षों में बड़े ठाकुर से भी राज की कभी भेंट-मुलाकात या बातचीत नहीं हुई। गाँव के युवकों ने राज से मिलने की—स्त्री-स्वातन्त्र्य-आन्दोलन चलाने में सहायता देने की प्रार्थना की पर राज ने मुलाकात नहीं की। उसने कहा—“मैं हवेली के पर्दों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूँगी। मुझे आन्दोलन करना नहीं आता—मैं अपने जीवन में अपना प्राप्तव्य अपनी सामर्थ्य से प्राप्त करूँगी, अपना कर्तव्य-पथ कभी छोड़ूँगी नहीं।

परन्तु बड़े ठाकुर का जरा-जोर्ण शरीर इस तेजस्विनी बधू के तेज को सह न सका। उनके गर्व और परम्परा के स्वेच्छा-शासन पर तो उस अनशन ने ही ऐसा प्रहार किया था कि वह दो टूक होकर ढह गया था—अब उसका ऐसा भयानक दर्प, स्वर्द्धा और आग्रह वे सहन न कर सके। अपनी असहनीय अवस्था में समझ गए थे। बहू के सामने उसकी पेश नहीं चलेगी—यह वह भली-भाँति जानते थे। स्त्री ऐसी भी समर्थ हो सकती है इसकी कभी उन्होंने कल्पना भी न की थी। एक बार गुस्से में आकर उन्होंने बहू के हाथ का भोजन नहीं किया सो बहू ने ऐसी ठसक दिखाई कि फिर कभी इसके लिए ठाकुर की खुशामद चिरीरी नहीं की। एक बार कहने पर ही ठाकुर उसके हाथ का भोजन ग्रहण कर लेते। फिर सुलह होने के बाद वे उसकी अभिलाषा कर रहे थे। परन्तु बहू ने तो एक बार भी फिर उनसे पूछा ही नहीं। इतना ही नहीं—उनसे भी सौगुन

हजार गुना मान दिखाकर उस चौके में खाना ही नहीं त्याग दिया जिसमें ठाकुर की परछाई पड़ती थी—उमने सुसराल का अन्न ही नहीं ग्रहण किया। इस पर यह अपराजिता न किसी से सहायता लेती है, न किसी की आन मानती है, फिर भी उसकी विनय, शील, चरित्र, विद्वत्ता, दृढ़ता, और चुपचाप कष्ट-सहिष्णुता अपरिसीम हैं। यह भी ठाकुर ने देखा। उन्हें अपना फूहड़ और भद्दा काम हजार रूप धारण करके उन्हीं का उपहास-मा करता प्रतीत होने लगा। वे चाहते थे, बहू मुझसे खुश हो जाय, बहू की भर्ति रहे। उनके मन में उसके प्रति अपार स्नेह का उदय हो रहा था, परन्तु वे आगे बढ़कर बहू के सामने हाथ न पसार सकते थे। किन्तु अब उनका गर्व नहीं—लज्जा ही उन्हें बहू के सामने नहीं जाने देती थी। वे भीतर-ही-भीतर घुट रहे थे। एक प्रकार की आत्म-ग्लानि और पराजय की भावना उनके अंग में घर कर गई थी।

इसी समय एक और भारी आघात उन्हें लगा। जमींदारी खत्म कर दी गई। और, उनकी पढ़ियों से परम्परागत मान-मर्यादा जैसे एक-बारगी ही लुट गई। पुराने विचार के बूढ़े ठाकुर इस चोट को न सँभाल सके। इस समय उन पर कुछ कर्ज भी था, जमींदारी की आय वषों से वन्द थी, गाँव से उनका रुआब पहले ही से उठ गया था। घर के भीतर घुसते ही जैसे वे अपने को घोर अपराधी समझने लगते थे, घर-बाहर सर्वत्र उन्हें सब-कुछ सूना सा, पराया सा लग रहा था। अंत में बड़े ठाकुर शैयागत हुए। सूचना पाकर भी राघवेन्द्र पिता को देखने नहीं आए। इधर वर्षों से ठाकुर राघवेन्द्रसिंह ने पिता की ओर से बे-रुखी अस्वित्थार कर रखी थी। रोग-शैया पर बड़े ठाकुर लुटपटाने लगे। उन्हें लगा—जैसे कहीं कोई उनका न था। नौकर-चाकर उनकी सेवा से कतराने लगे। ठाकुर स्वभाव के कड़ुए तो थे ही, इधर वे चिड़चिड़े भी हो गए थे, इससे नौकर-चाकर उनसे फिरे-फिरे रहते थे। अब रोगी होने पर यह दुरवस्था और बढ़ गई। महीनो नौकरो को तनखाह नहीं मिलती थी, ठाकुर उन्हें क्रोध में आकर गाली बरते थे। नौकर उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते, उलटकर जवाब भी दे देते थे। जमींदारी की खबरें, असाधियों के विद्रोह, गाँव का वातावरण जैसे सब-कुछ बड़े ठाकुर को चैलेंज दे रहा था।

जब से ठाकुर बीमार पड़े, राज दिन में दो-चार बार नौकर-चाकरों से हाल-चाल पूछती। उन्हें आवश्यक हिदायतें देती—पथ्य-पानी की खोज-खबर रखती—परन्तु रोग बढ़ता ही गया—और एक दिन राज ने सुना—बड़े ठाकुर को सैकड़ों दस्त आ रहे हैं, वे बेहोश पड़े हैं।

राज अब न रह सकी। वह पर्दे की मर्यादा का उल्लंघन करके बाहर की बैठक में आई। बड़े ठाकुर की हालत बहुत खराब थी, मल-मूत्र में उनका शरीर लथपथ था किमी ने उनकी सफाई न की थी, किसी ने उनके मुँह में पानी नहीं डाला था। राज ने तुरन्त निर्णय कर डाला। सेवकों और दासियों की मदद से वह उन्हें ऊपर उठाकर अगनी कोठरी में ले आई। अपने विस्तर पर उन्हें सुलाया। उनके शरीर की सफाई की। गाँव के वैद्य को बुला भेजा। ठाकुर की सेवा में उसने दिन-रात एक कर दिया। बीच-बीच में ठाकुर होश में आते। कभी-कभी बहू को पहचानते। कुछ बड़बड़ाते—फिर आँखें बन्द करके पड़-रहते। नींद और परिश्रम को एक ओर रखकर राज ने बड़े ठाकुर की बड़ी भारी सुश्रूषा की। यह सब-कुछ हुआ—परन्तु उसने ठाकुर को अपने हाथ से न जल पिलाया, न पथ्य दिया—दवा भी उसने हाथ से नहीं छुई, यह सब काम घर के बूढ़े नौकर और मिसरानी के हाथ ही से किये गए। धीरे-धीरे ठाकुर को होश आने लगा—वे पड़े-पड़े चुपचाप बहू की कठिन तपस्या देखते रहे। बहुत बार उन्होंने चुपचाप आँसू बहाए।

और एक दिन, जब राज नीचे झुककर उनका बिछौना ठीक कर रही थी, बूढ़े ठाकुर ने अपना हाथ बढ़ाकर राज के पैर पकड़ लिए। राज घबराकर हट गई। उसने कहा—“यह क्या किया पिता जी!”

“बेटी, मेरे पास बैठ, इच्छा होती है तुझे माँ कहूँ। होश और बेहोशी में मैंने तुझे एकनिष्ठ होकर इस दुष्ट बूढ़े की सेवा करते देखा है। बेटे ने मुझे भुला दिया, जिसे छ्वाती से लगाकर मैंने माँ और बाप दोनों का प्यार दिया था। और तू—किसी पुण्यात्मा की बेटी, इस अधम को जीवन-दान करने आई, जिसे मैंने केवल कष्ट ही दिया। अपने पाप को मैं प्रत्यक्ष, पर बेटी, वह मेरा नहीं परम्परागत रूढ़ियों का पाप है। हमारे संस्कार ही ऐसे हैं। किन्तु अब तू मुझे

मन से क्षमा कर दे, जिससे तूने जो इतने यत्न से इन प्राणों की रक्षा की है वह सफल हो—सार्थक हो।” राज बोली नहीं। बूढ़े ठाकुर के दोनों चरण छोटकर वह बैठ गई और उन पर अपनी आँखें रखकर उन्हें आँसुओं से धोने लगी। बूढ़े ठाकुर भी चुपचाप आँसू बहाते रहे। गर्जने वाले बादल अब वर्षा कर रहे थे। और भङ्गावात भर-भर भरना बहा रही थी। इस रिमझिम दुहरी वर्षा में युग-युग के कलुष पाप, कुत्सा और दंभ धुल और बह रहे थे। शुद्ध प्रेम, श्रद्धा और आत्मीयता की मन्दाकिनी की धारा बह रही थी। यह मूक मौन रुदन, आनन्द और विश्वास की गहरी एकता उत्पन्न कर रहा था।

इसी समय बूढ़ी मिसरानी ठाकुर का भोजन लेकर आई, राज चमककर जैसे अछूत हो—ठाकुर के चरण छोड़-अलग हट गई। मिसरानी ने भोजन ठाकुर के निकट चौकी पर रख दिया, परन्तु ठाकुर ने उधर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वे आँखें बन्द किये चुपचाप आँसू बहाते रहे।

महाराजिन ने दो-तीन बार ठाकुर से भोजन करने के लिए कहा, परन्तु ठाकुर ने नहीं सुना। राज ने संकेत से महाराजिन को बाहर जाने को कहा और उसके चले जाने पर ठाकुर के तनिक निकट आकर कहा—“पिता जी, भोजन कर लीजिए।”

ठाकुर ने आँख उठाकर राज की ओर देखा। चारों ओर घूमकर उनके नेत्र नीचे को झुक गए। उन्होंने कंपित कण्ठ से कहा—“बेटी, क्या तू मुझे क्षमा नहीं कर सकती, इस दुष्ट बूढ़े को?”

“नहीं नहीं, पिता जी, आप ऐसा मत कहिए।”

“तू कह कि क्षमा करेगी या नहीं?”

“आप यह क्या कह रहे हैं, आपकी क्या आज्ञा है कहिए!”

“तो तू जब तक अपने हाथ से न खिलायगी, मैं नहीं खाऊँगा।”

कुछ देर राज चुप रही। फिर उसने आँसू पोंछकर आगे बढ़कर थाल हाथ में उठाया और कहा—“भोजन कीजिए।”

बूढ़े ठाकुर ने बालक की भाँति मचलकर कहा—“न, नहीं करूँगा, इस तरह भोजन नहीं करूँगा, तू अपने हाथ से प्रसाद बनाकर ला बेटी।”

राज ने एक शब्द भी नहीं कहा । भोजन का थाल उठाकर वह चुपचाप बाहर चली आई । उसने प्रथम स्नान किया, देवार्चन किया और फिर रसोई में जाकर अपने हाथ से जल्दी-जल्दी ससुर के लिए पथ्य बनाया । अब वह थाल सजाकर उज्ज्वल शुभ परिधान में ससुर के सम्मुख पहुँची तो बूढ़े ठाकुर आनंद-विह्वल हो दोनों हाथ पसारकर चीख उठे—“अरी मेरी माँ, अन्नपूर्णा, तू हजार बरस जी, आज तूने मेरा जीवन धन्य कर दिया, कुल धन्य कर दिया । अब अपने हाथ से खिला बेटी !”

राज ने बैठकर चम्मच से ठाकुर को धीरे-धीरे भोजन कराया । शुद्ध होने पर ठाकुर ने कहा—“बेटी, जरा तकिए का सहारा देकर मुझे बैठा तो ।” राज ने चारों ओर तकिया लगाकर ससुर को आराम से बैठा दिया । बूढ़े ठाकुर ने कहा—“जरा-सा कष्ट तो कर बेटी, वहाँ उस कमर में मेरा बक्स है, लेती आ, यह चाबी है ।” उन्होंने चाबी का गुच्छा राज के हाथ में दे दिया । राज ने काँपते-हाथों बक्स खोला, उसमें से एक जोड़ा कीमती जड़ाऊ कड़े निकालकर कहा—“इन्हें पहन तो बेटी ! मैं देखूँ कैसे लगते हैं ।”

निराभरण राज ने थोड़े संकोच के बाद कड़े पहन लिए । बूढ़े ठाकुर ने कहा—“तेरी सास के हैं बेटी । मरते वक्त उसने कहा था—‘मेरी बहू को अपने हाथ से इन्हें पहनाना ।’ सो बेटी, मेरे सामने आज तू प्रतिज्ञा कर । दो चीजें जो मैं तुझे आज देता हूँ, इन्हें कभी अपने से दूर न करना ।,,

“जो आज्ञा पिता जा ।”

“तो एक तो यह कड़ों की जोड़ी और दूसरी ये चाभियाँ । आज से तू अपने घर को सँभाल बेटी ! आज मैं अपने जन्म को सफल कर चुका ।

राज ने आँचल गले में डालकर बूढ़े ससुर के चरणों में प्रणाम किया और कमरे से चली गई । बूढ़े ठाकुर बहुत देर तक आँसू बहाते रहे ।

२०

दूसरे ही दिन से राज ने हवेली का चार्ज अपने हाथ में ले लिया । ठाकुर से उसने पछा नहीं । सलाह नहीं ली । क्षण ही भर में वह कर्मठ गृहिणी बन गई ।

उसने सबसे पहले रसोईघर का सुधार किया। वहाँ का अपव्यय—लूट-खसोट बन्द की, सारी हवेली की सफाई-व्यवस्था की। दास-दासियों के कार्य विभाजित-किये। अनावश्यक वस्तु और अनावश्यक व्यक्ति हटा दिए गए। ठाकुर एक ही सप्ताह में चलने-फिरने योग्य हो गए, वे बहुत खुश थे, लाठी टेकते और खड़ाऊँ खड़खड़ाते हुए वे हवेली-भर में दिन में दस बार घूम आते। राज का नाम रखा उन्होंने 'दौलत'। उसकी कोठरी के द्वार पर आकर कहते—“अरी मेरी दौलत बेटी, कहाँ है ?” वे राज से बहुत-सी बातें करना चाहते, पर राज केवल मुस्कराकर रह जाती। वही मुखरा राज जो दो टूक-जवाब देने में एक थी, अब मौन-मूक बन गई थी। कहने ही से पहले वह बड़े ठाकुर की सब आवश्यकताओं की पर्ति कर देती थी। ठाकुर अब घर या जमींदारी की किसी बात में दखल नहीं देते थे, हर बात का जवाब उनका था—“मेरी दौलत बेटी से पूछो” उनका पूजा-पाठ, नित्य-कर्म आराम से चल रहा था। भोजन-शयन की उत्तम व्यवस्था थी।

राज का विद्यालय भी खूब सफल हुआ था। जिन ग्राम-बधुओं ने राज के इस विद्यालय की सहायता ली, उन्होंने अपने घरों में काफी सुधार किये थे। गाँव के कुछ बूढ़े लोगों ने उनका विरोध किया परन्तु तरुणों का दल उनका सहायक था। इन सुधारों से गाँव की काया पलट हो गई थी। सीधी-सादी कृषक-तरुणी कुल-बधू अपने जीवन में एक नई स्फूर्ति का अनुभव कर रही थीं। राज ने उन्हें कालेज की तितलियाँ बनने की शिक्षा नहीं दी थी। कर्मठ गृहिणी बनने की शिक्षा दी थी। वे अपने देहाती गृहस्थ के धन्धे, दूध-दही की व्यवस्था, पशुओं का पालन, घरेलू, बगीचों साग-सब्जी का उत्पादन, रद्दी और निकम्मी घर वस्तुओं का उपयोग, खेतों में पुरुषों का सहयोग, भोजन में सादगी और व्यवस्था, स्वच्छता-सफाई और स्वास्थ्य रक्षा, बच्चों की देख-भाल-शिक्षा-सुधार और उनके स्वास्थ्य तथा चरित्र-गठन आदि सभी बातों की व्यावहारिक शिक्षा राज ने उन्हें दी थी। उनके अन्ध-विश्वास दूर हो चुके थे, उनके निराश और अंधेरे हृदय ज्ञान के प्रकाश से जगमगा रहे थे। उन्हें अक्षर-ज्ञान अधिक न था व्यावहारिक-ज्ञान था। राज उन्हें अधिकांश में मौखिक

शिखा ही देती थी, उनकी त्रुटियों को सुधारती थी। उसने स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता पर बहुत जोर दिया था। उसने उन्हें समझाया था कि 'सब भगड़ों की और दासता की जड़ यह है कि स्त्रियाँ पुरुषों की कमाई खाती हैं। यद्यपि वे पुरुषों से अधिक महत्त्वपूर्ण काम घरों में करती हैं।' राज ने उन्हें समझाया—'वे घर में बैठकर कुछ ऐसे धंधे अवश्य करें जिनसे कुछ धन उपार्जित हो।' देहाती गरीब किसान का जीवन बहुत सूना और अज्ञानान्धकार में डूबा हुआ रहता है। उनके घर भी वैसे ही पिछड़े हुए हैं। वे घर नहीं, जगली पशुओं की माद हैं। शताब्दियों से वे ग्रामीण किसान उन्हीं में उसी भाति रहते आए हैं। राज ने उन्हें शहर के तड़क-भड़क वाले बँगले नहीं बनाया—देहात के सुखद और स्वस्थ गृहों के रूप में परिणत करने में सहायता दी। बालको और पुरुषों के सहयोग से वह उत्पादन भी करने लगी। पुरुषों को अपेक्षाकृत उत्तम भोजन मिलने लगा। इससे वे प्रसन्न रहने लगे। इस प्रकार राज ने इन तीन वर्षों में गाँव की काया ही पलट दी।

जमींदारी की समाप्ति से जमींदारों के असाध्य अधिकार हट गए और किसान सम्पन्न हुए। यों भी मंहगाई का लाभ उन्हें था। गत युद्ध में उन्होंने बहुत रुपया संचित किया था। उनके तरुणों ने सेना में भरती होकर और घर वालों ने मंहगा अनाज उत्पन्न करके पचास-पचास वर्ष के कर्जें चुकाये थे, परन्तु अविद्या-अज्ञान और अनुभव की शून्यता से वे अपने जीवन का विकास नहीं कर पाते थे। यह विकास दिया राज ने वह भी उनकी गृहिणियों के द्वारा। धीरे-धीरे उनमें गृहिणियों के प्रति गहरे प्रेम, विश्वास और समानता के भाव उत्पन्न होते गए और स्त्री-पुरुषों ने मिलकर अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति बहुत-कुछ सुधार ली। दूसरे गाँवों ने भी इसका अनुकरण किया। कुछ तरुणों ने इसमें अधिक उत्साह दिखाया और गाँवों के जीवन उन्नत होने लगे।

परन्तु राज के ऊपर अभी बहुत भार था। श्वसुर ने उसे अपना लिया था। यह ठीक है, पर पति ने उसे नहीं अपनाया था। इतना ही नहीं, उसने एक दूसरी स्त्री से भी सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। बूढ़े ठाकुर ने इस पर पुत्र को लानत-मलामत दीं तो पुत्र ने पिता का भी त्याग कर दिया। आना-जाना और

पत्र-व्यवहार भी बन्द हो गया। राज सधवा होकर भी पति-सान्निध्य से वंचित रह रही थी। वह श्वेत साधारण साड़ी पहनती-निराभरण रहती, स्वल्पाहार करती। केवल श्वसुर के दिये कड़े अवश्य पहने रहती थी।

राज ने गाँव का बहुत सुधार किया था, पर उसे अभी अपने घर के भारी सुधार करने थे। उसकी तीन अविवाहिता ननदें थीं, उनमें सबसे छोटी की आयु २५ वर्ष और बड़ी की ३२ वर्ष की हो चुकी थी। तीनों अभागिनी बहनें दहेज का शिकार थीं। छोटे ठाकुर ने कभी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया था, बड़े ठाकुर अपनी मर्यादा के अनुसार भारी दहेज नहीं दे सके और वे कुमारी ही अधेड़ अवस्था को पहुँच चुकी थी। पर्दे की कड़ाई इतनी थी कि वे खिड़की से बाहर भाँक भी न सकती थी, पर्दे की इस कड़ाई का विरोध राज ने जान-बूझकर ही नहीं किया था, इन तीनों ननदों को राज से बहुत सहारा मिला था। अपनी शिक्षा-संस्था में उसने उन्हें प्रमुख स्थान दिया था। उससे उनके निराश और अँधेरे जीवन में ज्योति के दर्शन हुए थे। चिन्ता-शोक और निराश जीवन ने उनके सुकुमार मुखों पर जो रेखाएँ खींच दी थीं—अब राज की ज्ञान ज्योति पाकर वे धुंधली हो गई थी। राज ने उन्हें समझा दिया था—किसी पुरुष की दासी बनकर उनके लिए बच्चे उत्पन्न करने ही में स्त्री का सौभाग्य निहित नहीं है। स्त्री के लिए बहुत काम हैं और उन्हें उधर ध्यान देना चाहिए। छोटी ननद का नाम नन्दिनी था—वह जरा तुनक मिजाज थी—परन्तु जब राज हँसकर उसके गले में गलवाहीँ डालकर कुछ कहती तो उसका गुस्सा कायम नहीं रहता था—उसे राज का आदेश मानना ही पड़ता था। जब से ठाकुर से उसकी सुलह हुई, और राज ने गृहिणी का स्थान ग्रहण कर लिया तब से राज अपनी ननदों के साथ ही खाती-पीती। वह कभी उन पर अपनी विद्या-सम्बन्धी श्रेष्ठता को प्रकट नहीं होने देती! बड़ी ननद के साथ तो वह अधीनता और आज्ञाकारिता का ही व्यवहार करती थी। इन सब कारणों से राज तीनों ननदों की परम विश्वास भाजन बन चुकी थी, और चारों एक-प्राण होकर अपनी घर-गृहस्थी का संचालन कर रही थीं।

एक बहुत बूढ़ी विधवा बुआ, दूर के रिश्ते की एक मामी आभा, और

कुछ रिश्ते-नाते के बच्चे भी हवेली में रह रहे थे। पहले ये सब अस्त-व्यस्त रहते थे, घर की चीजें चुराते थे, कलह करते थे, अब राज ने सबके लिए समुचित प्रबन्ध-व्यवस्था कर दी है। सब कोई राज का मुँह ताकता है। राज अब हवेली की केन्द्रीभूत मध्यबिन्दु थी।

और चार वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हो गए। इसी समय एक दुःखदायी घटना हो गई। एक मोटर एक्सीडेंट में छोटे ठाकुर सख्त घायल हो गए। राज को सूचना मिली कि ठाकुर की हालत चिन्ता-जनक है। वे अस्पताल में पड़े हैं। राज ने एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया। वह श्वसर को लेकर तुरन्त ही अस्पताल में उनकी सुश्रूपा के लिए जा पहुँची। बड़े ठाकुर ने बहुत निषेध किया, पर राज ने नहीं माना।

२१

बहुत प्रयत्न करने पर, उत्तम चिकित्सा उपचार करने और राज की अथक सुश्रूपा से छोटे ठाकुर के प्राण बच गए—परन्तु उनकी दोनों आँखें जाती रही। दो मास अस्पताल में पति की सुश्रूपा करके जब राज अन्धे पति को लेकर उनके सूने बंगले में लौटी तो—उसका मुँह वर्षोंमुख बादलो की भाँति भारी हो रहा था। बड़े ठाकुर एक कमरे में पड़े जोर-जोर से रो रहे थे। छोटे ठाकुर अपने कमरे में गुम-सुम आराम कुर्सी पर पड़े थे।

राज ने श्वसर पाकर पति से बात की। राज ने कहा—“अब आप क्या करेंगे ठाकुर !”

“जो ठकुरानी कहें !”

“मैं तो आज घर जा रही हूँ !”

“मुझ अन्धे अपाहिज को यहाँ अकेला छोड़कर ठकुरानी ?”

“आप चाहें तो घर चल सकते हैं !”

“घर मैं नहीं जाऊँगा !”

“क्यों ?”

“वहाँ जाने से मेरी मर्यादा भंग होगी। बड़े ठाकुर की बीमारी में मैंने

घमण्ड में आकर सुध नहीं ली। तुम्हारे साथ भी मेरा व्यवहार जग जाहिर है, अब क्या मैं तुम्हारी और बड़े ठाकुर की शरण जाऊँ ठकुरानी ? अन्धा हो गया इस लिए ? अन्धी मेरी आँखें हुई हैं, दिल नहीं, वह तो वैसा ही मगरूर है !”

“लेकिन बड़े ठाकुर आपके पिता हैं, और मैं आपकी पत्नी। इसके अतिरिक्त वह आप ही का घर है, फिर इतना संकोच क्यों ?”

“संकोच नहीं ठकुरानी, वहाँ जाने ही से मेरी मूर्छें नीची हो जायेंगी। मेरा गुस्सा तो अभी गया नहीं !”

“गुस्सा आपका क्या पिता पर है या पत्नी पर ?”

“दोनों पर !”

“पत्नी पर गुस्सा है वह मैं जानती हूँ; पर पिता पर क्यों ?”

“पिता ने पुत्र के मान का निर्वाह नहीं किया। पुत्रवधू से वे पराजित हो गए !”

“ओह, यह बात है !”

“यह बात क्या तुम जानती नहीं थी ठकुरानी !”

“जानती थी ठाकुर, पर आपके सुँह से भी सुनना आवश्यक था !”

“सुन लिया, अब कहो !”

“मेरा कहना यह है कि अब क्या करेंगे आप ?”

“सोच नहीं पाया हूँ। सोचूँगा, तुम्हीं कुछ सलाह दो ठकुरानी !”

“पैनशन तो मिलेगी ?”

“बहुत कम, वह जायगी कर्जे में, खर्चा कैसे चलेगा !”

“कुछ रुपया हर महीने मैं लेजती रहूँगी, पर वह अधिक नहीं होगा !”

“तुम्हारा भेजा रुपया भला मैं लूँगा ?”

“जानती हूँ ठाकुर, नहीं लोगे। तब एक बात और है !”

“क्या ?”

“आप बैरिस्टर हैं इतने दिन मजिस्ट्रेट रह चुके हैं। कानून का आपका बहुत अच्छा ज्ञान है, आपकी प्रतिष्ठा और नाम भी कम नहीं है, आप प्रैक्टिस कर सकते हैं !”

“अन्धे वकील की प्रैक्टिस चलेगी ?”

“वकील को तो वाणी और दिमाग की ही आवश्यकता होती है। आखिं को नहीं, फिर आप आखिं वालों का सहयोग ले सकते हैं। आप यदि कोर्ट में न भी जायें तो चेम्बर प्रैक्टिस कर सकते हैं। लोगों को सलाह-मशविरा दे सकते हैं। मेरा खयाल है, आपको इसमें सफलता मिलेगी।”

“तुम्हारी यह सलाह बहुमूल्य है, मैं इस पर विचार करूँगा।”

“और कभी मेरी आवश्यकता हो तो मुझे याद करना।”

“तुम्हारी यह सूचना भी याद रखूँगा ठाकुरानी, परन्तु क्या एक बात पूछूँ ?”

“पूछिए !”

“तुम मेरी बीमारी में मेरी सेवा करने क्यों आई ? मैंने तो तुमको बुलाया न था, दो मास तुमने रात-दिन एक करके मेरी सेवा की, मेरे प्राण बचाकर एक अन्धे के जीवन का दुःख ही बढ़ाया। इसकी क्या जरूरत थी, ठाकुरानी ?”

“जरूरत थी, मेरा जो कर्तव्य था वही मैंने किया।”

“कर्तव्य ? सिर्फ कर्तव्य ! क्या कहा तुमने ? ठाकुरानी, जरा फिर तो कहो।”

“जो मेरा कर्तव्य था मैंने वही किया।” राज का मुँह सूख गया।

“ओह कमाल हो गया ठाकुरानी !”

“क्या हुआ ठाकुर ?”

“एक तमाशा हो गया, अन्धी आखिं ने एक स्वप्न देखा था, वह भूटा हो गया, बिलकुल भूटा।”

“कैसा स्वप्न ठाकुर।”

“जाने दो उसे ठाकुरानी, जाओ अपना कर्तव्य-पालन करो, अन्धे का सपना सुनकर क्या करोगी ? कब जा रही हो ?”

“आज ही सन्ध्या की गाड़ी से।”

“जाओ फिर ठाकुरानी, अब सन्ध्या होने में शायद विलम्ब नहीं है।”

“पिताजी को क्या प्रणाम नहीं करोगे ?”

“तुम्हीं कर देना ठाकुरानी !”

“और आशीर्वाद ?”

“आशीर्वाद से मेरी कुछ भलाई होने की संभावना नहीं है ठकुरानी ! बोझ चाहे पिता का हो चाहे पत्नी का, अधिक लादना अच्छा नहीं, अन्धा आदमी हूँ यह भी सोचो ।” ठाकुर बड़ी देर तक मौन बैठे रहे । राज भी जड़-वत् बैठी रही । बहुत देर इसी भांति सन्नाटा रहा । तब राज ने उठते हुए कहा—“नमस्ते ठाकुर !”

“नमस्ते ठकुरानी !”

राज आँखों से हीरा-मोती बखेरती चली आई, ठाकुर पत्थर की मूर्ति की भांति आरामकुर्सी पर पड़े रहे । वहाँ उनकी कोठी की उस राह पर कितने हीरा-मोती बिखरे—सो अन्धे ठाकुर न देख सके ।

२२

अष्टमङ्गल दल की एक सदस्या का नाम रुक्मिणी था । रुक्मिणी देखने में जरा साँवली थी, आगे के दो दात उसके जरा बड़े थे । वह एक गम्भीर प्रकृति की लड़की थी, जिस बात पर और सब खिलखिलाकर हँसती थीं, उस पर रुक्मिणी केवल मुस्करा देती थी, वह लजीली और एकान्तप्रिय भी थी । पढ़ने-लिखने में भी उसकी बुद्धि मद्धम थी । परन्तु उसने बी० ए० तक सफलतापूर्वक अपना अध्ययन समाप्त कर लिया था ।

रुक्मिणी के पिता मध्यम श्रेणी के पुरुष थे । वे कलकटरी कोर्ट में हैड-क्लर्क थे । रिश्वत की आमदनी को वे बुरा नहीं समझते थे । और अच्छी खासी रकम प्रतिदिन घर लाते थे, पर रहन-सहन बहुत साधारण रखते थे ! रुक्मिणी तीन बहनें थीं । सबसे बड़ी का ब्याह पहले हो गया था, वह एक संतान प्रसव करके और केवल पाँच साल की गृहस्थी का सुख । भोग प्रसव-पीड़ा से स्वर्ग-गत हो गई थी । सबसे छोटी मालती अपनी सुन्दरता और चपलता के कारण पसंद की जाकर अपनी बड़ी बहन की कुर्सी पर जीजा जी के घर जा बैठी थी, यद्यपि उसने मैट्रिक भी पास नहीं किया था । रह गई थी केवल रुक्मिणी—उसका कोई गाहक ही नहीं जुटता था, देखने में वह कुछ आकर्षक न थी, बात-चीत और रंग-ढंग में भी मोहक न थी । पिता उसके लिए उपयुक्त दहेज देने में

असमर्थ थे, वे उसे पढ़ाते भी जाते थे और वर भी तलाश करते जाते थे। वे चाहते थे, कि कोई दूजिया वर मिल जाय तो उसे सस्ते में घर से निकाल बाहर करें। पर सौदा कही पटता न था, उधर लड़की पढ़ती चली गई। राधा और सहेलियों के संकर्म में आकर उसके विचारों में भी क्रान्ति हो गई है। अब वह पिता के पसन्द किये वर से विवाह करने को तैयार न थी। वह खुलकर अपने मन का भाव तो प्रकट न कर पाती थी, पर समय-समय पर विवाह का विरोध अवश्य करती रहती थी। उसका कहना था—मैं अविवाहित रहकर ही स्त्री जाति की सेवा करूँगी। अवस्था उसकी अब २१ को पार कर रही थी, राधा के 'अष्ट-मंगल' की वह आनरेरी सेक्रेटरी थी। अपने काम को वह खूब सावधानी और परिश्रम से करती थी। 'अष्टमंगल-संस्थान' का नाम अब प्रसिद्ध हो गया था। वहाँ कालेज की उत्तीर्ण छात्राओं को गृहस्थ जीवन और स्त्रियों के कर्तव्य की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। स्वयं सिनहा साहब इस संस्था में जी-जान से जुटे थे। उन्होंने अपनी संपूर्ण सम्पत्ति इस संस्था को प्रदान की थी, ज और राधा इस संस्था के सर्वे-सर्वा थे। वे स्वयं आदर्श दम्पति थे, वे आदर्श दाम्पत्य की भारत में स्थापना कर रहे थे। तीन वर्ष से रुक्मिणी संस्था की सेक्रेटरी का कार्य कर रही थी, अब अकस्मात् उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। इससे आजीविका की भी समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई। अन्त में एक दिन उसने राधा से अपनी कठिनाई कही। दोनों सखियों में वार्त्तालाप हुआ !

राधा ने कहा—“मैं तुझसे बार-बार कहती रही हूँ कि संस्था से वेतन लो ?”

“फिर मैं संस्था की सदस्या न रहकर नौकर न हो जाऊँगी।”

“नहीं सखी, यह नौकरी नहीं, वेतन लेने पर भी तेरी सेवाएँ तो अमूल्य ही रहेंगी।”

“नहीं बहन, ऐसा न कर सकूँगी, कुछ और उपाय बताओ।”

“और उपाय वही है जो सदा से होता आया है, विवाह करके और पति की कमाई पर दखल कर लो।”

रुक्मिणी कहना चाहती थी, कि पति को पकड़कर कहाँ से लाऊँ, विवाह क्या मेरे हाथ की चीज है ? पर उसने कहा—“इस बात को रहने दो बहन !”

राधा उसके मन की बात समझकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने कहा—“सुन सखी, पागलपन न कर मैंने तेरे लिए एक नागर ठीक कर लिया है।”

“हटो, हँसी न करो बहन, काम की बात करो।”

“अरी पगली, क्या तू अष्टमङ्गल के नियमों और उद्देश्यों को नहीं जानती, इसके कुछ उद्देश्य गूढ़ और प्रच्छन्न हैं।”

“गूढ़ और प्रच्छन्न कैसे?”

“वही कहती हूँ! देख, स्त्री को एक खूँटा चाहिए।”

“खूँटा क्या?”

“खूँटा नहीं जानती, जिसमें भैंस-गाय बाँधी जाती है।”

“तो स्त्रियाँ भी क्या गाय-भैंस हैं?”

“भैंस-गाय भी तो स्त्री जाति ही के अन्तर्गत हैं बहन, भैंस-गाय जिस खूँटे से बाँधी जाती हैं, वही उनका थान होता है, वही वे खाती-पीती, दूध देती और अपने बच्चे को चूमती-चाटती हैं।”

रुक्मिणी को हँसी आ गई। उसने कहा—“कहाँ मिलेगा यह खूँटा?”

“मैं ढूँढ़ दूँगी, पर बँधना पड़ेगा कहे देती।”

“बाधो ही गो तो बँधूँगी क्यों नहीं, बँधने ही के लिए तो स्त्री जाति में जन्म लिया है बहन!”

“तो इसका अफसोस क्या? जिससे बँधोगी उसे भी तो बाँधकर रखोगी।”

“तो बहन, तुम्हारा यह ‘अष्टमङ्गल’ यही बाँध-बूँध के काम का ही है।”

“हाँ हाँ, खूब मजबूती से बाँध-बूँध सिखाना उसका एक काम है, जिससे न कोई चीज चोरी हो सके न इधर-उधर हो।”

“अच्छी बात है, कब दिखाओगी खूँटा।”

“ऐसी बेचैन हो गई वत्सल, कल तक धीरज धर। कल शाम को चार बजे मेरे पास चाय पीने आना।”

“खूँटा भी शायद चाय पियेगा।”

“हाँ हों, बाँधने-बूँधने की सब बात वहीं पक्की हो जायगी।”

बात खत्म हुई और दोनों सहेलियाँ अपने-अपने काम में लगी।

अब माधव की बात भी कहें—ब्रजराज के साथ राधा के ब्याह होने से माधव बहुत-बहुत नाराज हो गया। अंग्रेजी और हिन्दी में वह जितनी बकवाद कर सकता था, कर गया। राधा से उमने बोलना बन्द कर दिया और अन्न-पर्णा के साथ खूब तूम-तड़ाम किया। मौसी ने कहा—“यह सब तेरा ही तो गधापन है, इतना कहा—लड़की को काबू में कर, पर तूने एक न मुनी।”

“मैं तो एकजामिनेशन में लगा था, तुमने क्यों नहीं सिनहा साहब की नाक में नकेल डाल दी। तुम कहतीं तो सिनहा साहब की क्या मजाल थी और यह दहकानी जंगली बागड़बिल्ला न जाने कहाँ से आ मरा।”

परन्तु राधा और ब्रज ने माधव को देर तक नाराज न रहने दिया। खूब धूम-धाम से खातिर-तकाजा करके लाड-प्यार करके उसकी अंग्रेजी भाषा की योग्यता की सराहना करके उसे खुश कर लिया। राधा ने कहा—“माधव, घबराना नहीं मैं तुम्हारी शादी ऐसी लड़की से करूँगी कि जिसे देखकर सारी दुनिया जल मरे।”

माधव ने कहा—“अभी तो तुमने मुझे ही जलाया है, पर देखना—तुम्हें एक दिन अपनी भूल भी मालूम हो जायगी, पहाड़ जैसी भूल। तुम खुद जल-जलकर तड़पोगी।”

×

×

×

उस दिन शाम को राधा ने खूब तड़क-मड़क से चाय का सरंजाम किया। चाय पर खास तौर पर माधव को निमन्त्रित किया। निमन्त्रण पत्र में लिखा—“आज दुनिया भर को जलाने का सरंजाम है, जरा ठाठ से आइएगा।”

माधव संकेत समझ गया। बढ़िया सिल्क का सूट और किरमिची रंग की टाई, नया वारनिश-शू-पहनकर दो बार खूब अच्छी तरह दाढ़ी बनाकर। मूँछों के एक-एक बाल को बीन-चुनकर वह राधा के पास पहुँचा। राधा अकेली ही बैठी कुछ पढ़ रही थी और अभी निश्चित समय में पूरे पौन घण्टे की देर थी। पर माधव को देखते ही राधा ने हँसकर कहा—“खूब आए माधव, यह टाई तो

गजब की लगाई भई, तुम्हारी सुसुचि का कायल होना पड़ता है। हाँ, यह सूट कब सिलवाया ?”

माधव ने तिनककर कहा—“सूट और टाई की ही यदि दावत देनी है तो इन्हें उतारकर तुम्हारे सुपुर्द करके बन्दा रखसत होता है।”

“अरे नहीं नहीं, माधव असल बात तो यह है कि आज एक आदमी आने वाला है। मैं उससे पूछूँगी कि बता माधव जैसा कोई पुरुष दुनिया में कहीं देखा है ? आज मैं तुम्हारी कसम—उसे चुनौती दूँगी।”

“खाक चुनौती दोगी, ए सिम्पली फुलिशनैस, मगर याद रखो मैं किसी आदमी की परवाह नहीं करता।”

“वाह यह कैसी बात, परन्तु एक बात कहो माधव, पानी से भरी हुई काली-काली घटाएँ कैसी सुहावनी होती हैं तुम्हें पसन्द है न ?”

“वाह क्या बात है, जब जलते-भुनते शरीर पर ठण्डी हवा के झोंके लग रहे हों और काली-काली घटाएँ भीनी-भीनी फुहार बरसा रही हों।”

“तो सब जलते-भुनते पहाड़, तपती हुई भूमि, झुलसी हुई लताएँ हरी-भरी शीतल हो जाती हैं। हाँ, वह गीत तुम्हें याद है—‘कारे कारे बादरवा’।”

“याद-वाद सब-कुछ है, परन्तु यह बे-मौसम के बादल क्यों याद आ रहे हैं ?”

“वाह बे-मौसम क्यों भाई, जले-भुने पर शीतल फुहार, अच्छा सुनो—श्यामा चिड़िया कैसी प्यारी होती है, होती है न ?”

“उसकी तो बोली ही से कलेजे में हूक उठती है, जैसे वियोगिनी चिर-विरह में चुपचाप सिसक रही हो।”

“वाह माधव, क्या कविता कर डाली तुमने भाई, श्यामा-वामा भी भाग्य से मिलती है फिर उसका जैसा श्याम-सलोना रूप हो, वैसी ही तड़पती हुई वाणी हो। और बड़ी-बड़ी आखों की मदभरी चितवन ! भई माधव, देखना कहीं आभा न खो देना !”

“कहीं, तुम मुझे पागल तो नहीं बना दोगी।”

“वह आदमी आ रहा है कि देखकर पागल न हो जाओ तो नाम नहीं।”

“माधव ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता, पर अब देर कितनी है !”

“तुम्हारी घड़ी शायद तेज चलती है ।”

“दिल की धड़कन भी ।”

“अभी तो आधा घण्टा है ।”

“तो इस आधे घण्टे का सदुपयोग होना चाहिए ।”

“इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ।”

“तब साफ-साफ कहो ।”

“जो पूछो ।”

“कौन है—वह श्यामली-सलौनी, श्यामा-वामा, मधुरालापिनी, स्वीट सिंगर, नाइटिंगेल, जल भरे मेघों के समान शीतल फव्वारों को छोड़ने वाली । बताओ तो ।”

“अरे, तो तुम सब समझ गए ?”

“क्या मुझे भोंदू समझा है ?”

“तो अब कुछ न कहेंगे, भाई, अपना माल खुद देख-भाल लेना ।”

“लेकिन खरा सोना हो ।”

“और यदि नीलम मणि हुई असली ?”

“तो परख लूँगा, मैं भी वह जोहरो हूँ कि जिसका नाम ।”

“मगर एक बात है माधव !”

“क्या ?”

“माधव उसके रोम-रोम में बसा है, माधव के नाम की वह दीवानी है ।”

“यह सब तुम्हारी ही करामात है, उल्टा-सीधा समझा दिया होगा ।”

“नहीं, तुम्हें उसने देखा है । वह तो तभी से लोट-पोट है, बस दिल की घुएड़ी कल खुली है ।”

“अब तो वक्त हो गया ।”

“अभी तो बीस मिनट बाकी हैं भाई ।”

“तो तब तक उसका नाम बताओ ।”

“मैं क्यों बताने लगी ?”

“बताना पड़ेगा ।”

“उसी से पूछना ।”

“ओफ़, जिद की भी हद है ।”

“बस, कह दिया ।”

“अब तुम सताने लगीं राधा !”

“खूब सताऊँगी ।”

“अरे भाई, कुछ कहो भी ।”

“बस घनश्याम छूटा, कुहुकिनी की कुहुक ।”

“बोरे आम कुहलिया कूकी ।”

“खूब कहा, भाई, लो अब तो पन्द्रह मिनट ही रह गए । अब सोच लो कैसे बातें करोगे ? कहीं वह तुम्हें गँवार न समझ बैठे, बड़े ठसक की लड़की है ।”

“बहुत ठसक वालियाँ देखी हैं, गँवार देखना चाहेगी तो दिखा दूँगा ।”

“क्या ब्रज को ?” राधा हँस पड़ी ।

माधव ने जैसे बहुत भारी बात कह दी । वह कौच पर पीछे को उठंगकर सीटी बजाने लगा ।

×

×

×

×

बहुत थोड़ा एम्ब्यूनेशन खर्च करना पड़ा, उसी चाय-पार्टी में निश्चित रूप से सब बातें तय हो गईं और एक ही मास में माधव के साथ रुक्मिणी का ब्याह हो गया । माधव और रुक्मिणी दोनों ही ‘अष्टमङ्गल’ में काम करने लगे । दोनों में खूब प्रेम और मेल-मिलाप रहा । माधव आदर्श पति और रुक्मिणी आदर्श पत्नी प्रमाणित हुई । ब्रज और राधा जब कभी राज की चर्चा करते—तभी तक दोनों गद्गद् हो जाते । ब्रज ने राज को पत्र कभी नहीं लिखा । राधा ने एक-दो पत्र लिखे । पर उसे उत्तर नहीं मिला । कई बार राधा ने चलकर राज से मिलने को कहा, पर ब्रज ने स्वीकार नहीं किया ।

२३

दिन बीते-मास बीते और वर्ष बीते । ऋतुएँ आई और गई । ग्रीष्म में सूर्य तथा वर्षा में जल-थल एक हुए शरद में चन्द्रमा की चाँदीनी छिटकी इक्कीस बार । इक्कीस वर्ष बीत गए । बड़े ठाकुर मर गए । छोटे ठाकुर तब भी घर नहीं आये । राज की बड़ी ननद भी कुँवारी मर गई । शेष दो कुँवारी बृद्ध हो गईं । उनका विवाह राज के बहुत चाहने पर भी न हुआ, वे न शिक्षिता थीं न रूपवती । देहाती हवेली की पर्दे वाली चहारदीवारी में वे बन्द थीं । राज का अपना कार्य जारी था । परन्तु अब इतनी आयु होने पर भी उसने ठाकुर की हवेली की पर्दे की मर्यादा का भंग नहीं किया ।

अन्ये ठाकुर की उड़ती हुई खबरें जय-तब मिलती रहती थीं, उनकी दशा दिन-पर-दिन खराब होती जा रही थी । परन्तु उन्होंने राज से मिलने की एक बार भी चेष्टा नहीं की, एक भी पत्र नहीं लिखा । बीच में सुना उन्होंने उसी स्त्री को फिर से बसा लिया है ।

एक दिन बूढ़े सेवक रामदीन के साथ एक बालक आया । बालक की आयु ८-९ वर्ष की थी । बालक सुन्दर और आकर्षक था । उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, चाँदी के समान उज्ज्वल मस्तिष्क और घूँघर वाले बाल बड़े ही भले लग रहे थे । वह एक खाकी निकर और सफेद कमीज पहने था । पैरों में बड़िया जूता था । रामदीन ने बालक को राज के सामने ले जाकर कहा—भाभी, यह बालक सदर से आपके पास आया है ।

राज ने ध्यान से बालक की ओर देखा—फिर कहा—“बेटे, किसके पास आये हो ।”

“बड़ी अम्मा के ।”

“बड़ी अम्मा कौन है बेटे ?”

“यह मैं नहीं जानता, बड़े ठाकुर की हवेली में बड़ी अम्मा रहती है ।”

“तुम्हें किसने भेजा है बेटे ?”

“छोटी अम्मा ने ।”

राज सोच में पड़ गई। बालक ने धीरे से अपने भीतरी पाकेट से एक चिड़ी निकालकर उसे राज के हाथ में देते हुए कहा—“यह चिड़ी भी है, बड़ी अम्मा के नाम।”

राज ने चिड़ी खोलकर पढ़ी—

“बहन, सब तरफ से निरुपाय होकर मैं तुम्हारी शरण आ रहा हूँ। मैंने तुम्हारी बहुत गुण-गारिमा सुनी है, छोटे ठाकुर की मैंने बहुत सेवा की, बहुत लात-जतियाँ खाईं, अन्धे होने पर भी मैंने उन्हें त्यागा नहीं। सेवा की, पिटी, गालियाँ खईं, परन्तु जब असह्य हो गया तो मुझे चली आना पड़ा। अपना पेट मैं जैसे सम्भव होगा भर दूँगी। ठाकुर से भोख नहीं माँगूगी। जिन्हें मैंने अपना सब-कुछ दिया उनसे लेना क्या? परन्तु बहन, यह उनका पुत्र है, इस भरण-पोषण अब मैं नहीं कर सकती। इससे इसे तुम्हारे पास भेजा है। मुझ अभागिनी की ओर न देखना, ठाकुर की कुल-आन आरं मर्यादा का विचार करना। इस बालक को अपनी ही कोख का समझकर रखना। यह मुझ भाग्य-हीना की तुम्हारे लिए भेंट है।

ठाकुर की हालत बहुत खराब है। उनकी आदतें बिगड़ी हुई हैं। उनके लिए सौ रुपये भी थोड़े और पचास भी थोड़े। रोज जो आता है, उड़ जाता है। उड़ाने-खाने वाले साथ लगे रहते हैं। शराब की लत उनकी बहुत बढ़ गई है। मार-पीट और गाली-गुस्सा उनकी आदत हो गई है। शरीर थक गया है। बूढ़े हो गए हैं। बाल सब पक गए हैं। नौकर-चाकर कोई नहीं है। कभी-कभी तो अन्धे ठाकुर ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं। बहुधा भूखे सो रहते हैं। शेर की तरह गुराते हैं। स्त्री-जाति से उन्हें घृणा हो गई है और प्रत्येक स्त्री को लाठी लेकर मारने दौड़ते हैं, रात-रात-भर तुम्हारा नाम ले-लेकर जोर-से पुकारते हैं। फिर रोते हैं। शराब मिल जाय तो फिर खाना-पीना नहीं होता है। बहन, जोते-जी उनकी मिट्टी ख़ार हो रही है, तुमने बहुत पुण्य किया है, बन सके तो ठाकुर की कुछ सहायता कर देना।

तुम्हारी अभागन बहन।”

चिड़ी पढ़कर राज सके की हालत में हो गई। जैसे उसके शरीर में रक्त

की गति रुक गई हो। वह मुँह ढाँपकर बहुत देर तक रोती रही। फिर उसने आँख उठाकर बालक की ओर देखा। वह चुपचाप खड़ा राज के मुँह की ओर देख रहा था। वह बड़ी देर तक एकटक उस बालक की ओर देखती रही। उसकी उँगलियों में वही चिड़ी लिपट रही थी। कुछ देर में उसने आँसू पोंछे। फिर उसने धीरे से कहा—“तुम्हारा नाम क्या है भैया?”

“मोहन, मेरा नाम मोहन है।” फिर कुछ रुककर उसने कहा—“तुम्हीं मेरी बड़ी अम्मा हो?”

राज ने कपित वाणी से कहा—“हाँ, मैं ही हूँ।”

बालक ने आगे बढ़कर राज के पैर छुए। राज ने हाथ बढ़ाकर बालक को गोद में खींच लिया। बालक ने कहा—“छोटी अम्मा ने कहा था ‘बड़ी अम्मा के पैर छूना’।”

“छोटी अम्मा ने और भी कुछ कहा था बेटा।”

“हाँ, कहा था, अब तुम्हें बड़ी अम्मा के पास रहना होगा?”

“सो तुम अब मेरे पास रहोगे?”

“रहूँगा।”

राज ने बालक को छाती से लगा लिया। फिर पूछा—“क्या तुमने अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं?”

“न।”

राज हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसने लाकर बालक को जलपान कराया। फिर उसे अपने हाथ से न्हिला-धुलाकर अपने बिछौने पर सुला दिया। युग-युग से सुप्त नारी-हृदय का मातृ भाव जैसे अकस्मात् ही उसके रोम-रोम में जागृत हो उठा, और उसने अधीर होकर बालकों को छाती से लगाकर बार-बार चुम्बन किया।

राज एक बार ही व्यस्त हो उठी, एक नई भावना—नई वासना ने जैसे उसे अभिभूत कर दिया। वह भूल गई कि बालक किसका है। उसके लिए बस्त्र, खिलौने, मिठाई और आवश्यक सामान जुटाने में वह अपना-आपा ही भूल गई। प्रतिक्षण बालक उसे अति प्रिय प्रतीत होता था। उस बालक को

पाकर राज अपने को भूल गई, अपनी जरठ अवस्था को भूल गई। वह उसे खिलाने, हँसाने-खेलने और प्यार करने के हजार मार्ग निकालने लगी। उसे अपने हाथ से न्हिलाकर साथ खिलाती, पास सुलाती, गुदगुदाती, प्रतिदिन नए वस्त्र पहनाती, जब वह सो जाता उसे एकटक देखती, उसके बाखों में उँगलियाँ घुमाती-घुमाती अपने को भूल जाती।

उसने बालक से बहुत सी बातें की। बहुत सी बातें जानी। बाबूजी बहुत खराब हैं। माँ को मारते हैं, गाली देते हैं, खाना नहीं देते, उसे भी प्यार नहीं करते। उसने सब बताया। वे शराब पीते हैं। रात-रात भर पागल की भांति चिल्लाते हैं, लाठी लेकर हर किसी को मारने दौड़ते हैं। यह भी उसने बताया। राज सुन्ती रही, सोचती रही। अन्त में उसने अपना कर्तव्य निश्चित किया। उसने पति की सेवा में जाने का निर्णय कर लिया। वहाँ जाने की आवश्यकता है, यह उसने अनुभव किया। उसने ननद को बुलाकर सब नीच-ऊँच समझाया और घर की ताली-कुञ्जी उसके सुपुर्द करके कहा—“पुकार हुई है बहन, मुझे जाना होगा।” बूढ़े कारिन्दे को बहुत बातें समझाईं। और, सुपचाप केवल थोड़े से पहनने के वस्त्र लेकर बालक का हाथ थामे वह पति की सेवा में चल दी।

२४

कचहरी के सामने, सड़क के उस पार एक कच्चा पुराना घर है। घर की दीवारें सब खराब-खस्ता हैं, आधा घर ढहा पड़ा है, सामने खपरैल का एक बड़ा बर्रांडा है। उस बर्रांडे में एक टूटा हुआ तख्त पड़ा है। तख्त की तीन ही टांगें सलामत हैं, चौथी टाँग के नीचे तीन-चार ईंटें जमाई हुई हैं। तख्त के एक ओर लोहे की तीन-चार कुर्सियाँ और दूसरी ओर एक पुरानी बैच पड़ी है। तख्त पर एक अंगोछा कमर में लपेटे अन्धे ठाकुर नंग-धड़ंग बैठे हैं। सिर एक-दम गंजा है। दस-बीस सफेद खिचड़ी बाल सुई की भाँति खड़े हैं। मूँछें बे-तर-तीबी से चारों दिशाओं में फैली हुई हैं। दाढ़ी भी एक-डेढ़ सप्ताह से नहीं बनी है। ठाकुर की कमर में एक मैला जनेऊ है। उनकी बगल में एक युवक बैठा है, युवक के सामने टाइप की मशीन रखी है, दो और नवयुवक लोहे की

कुर्सियों पर बैठे हैं, ये जूनियर वकील हैं। ठाकुर की सलाह-मशविरे से ये मुकदमे तैयार करते हैं।

एक व्यक्ति धीरे से आकर ठाकुर के पैरों के पास धरती पर बैठ गया। ठाकुर ने पूछा—“कौन है?”

“मटरूवा नाऊ हूँ सरकार!”

“अच्छा, बैठ जा कल तेल-मालिश करती बार नाऊ ने ठाकुर से दस रुपया तलब किया था—लड़कों के स्कूल खुल गए हैं, उनकी फीस दाखिल करनी है। ठाकुर ने आज सुबह देने का वादा किया था—इसी से मटरू आया है। ठाकुर को अपना वादा याद है। मटरू धीरे-धीरे ठाकुर के पैर दबाता जा रहा है, इधर-उधर की गपें भी चल रही हैं। ठाकुर चुप हैं, बीच में हूँ-हाँ कर देते हैं। कचहरी का समय हो रहा है, मुक्किल आने लगे हैं।

एक मुक्किल ने आकर दस रुपए का एक नोट निकालकर ठाकुर के सामने रखा। सलाम किया और बैंच के एक कोने पर बैठ गया। ठाकुर ने पूछा—“कौन है?” मदनलाल साहू है, इस्तगासा लिखाने आया है। जूनियर ने दस रुपये का नोट ठाकुर के हाथ पर रखा। नोट को भली भाँति दूसरे हाथ से छू-परखकर ठाकुर खुश हो गए, उन्होंने प्रसन्न मुद्रा से कहा—“यह तुम्हें कैसे मालूम हो गया साहू कि हमें इस वक्त ठीक इतने ही रुपयों की जरूरत है?” उन्होंने जनेऊ में बँधी चाभी खींचकर बक्स खोला और यत्न से वह नोट बक्स में रख दिया।

साहू बिचारा बोला नहीं। ठाकुर का संदर्भ समझा भी नहीं। हाथ जोड़कर बैठा रहा। ठाकुर ने इस्तगासा लिखाया। जूनियर से कहा—“लिखो।” लिखने के बाद टाइपिस्ट से कहा—“टाइप करो”, टाइप होने पर कहा—“सुनाओ।” सुनकर कहा—“ठीक है। दो रुपये टाइपिस्ट को दो, पन्द्रह आने का टिकट, दो रुपये अहमद के लिए और पाँच रुपये जूनियर के।” साहू ने चुपचाप सब खर्चा दे दिया। ठाकुर ने पूछा—“दिया खर्चा?” साहू ने कहा—“जी हुआ।”

“अच्छा, अब दस्तखत करो, और घर जाओ। कल बयान कलमबन्द होंगे।” साहू दस्तखत करके चला गया। ठाकुर ने पूछा—“साहू गया?”

“जी हँ ।”

ठाकुर ने फिर जनेऊ की चाबी से बक्स खोलकर नोट निकाला—नोट मटरू नाऊ के ऊपर फेंककर कहा—“ले रे मटरूवा, जा भाग ।” मटरू ने सलाम किया, नोट टेंट में लगाया और चलता बना ।

दो व्यक्ति आकर लोहे की कुर्सी पर बैठ गए । ठाकुर ने पूछा—“कौन है ?”

“मोहनसिंह और सुन्दरसिंह ।”

“इस वक्त कैसे आए ।”

“हुजूर, आज पेशी है ।”

“किस बात की ?”

“शहादत की सरकार !”

“शहादत लाए हो ?”

“नहीं, ला सके हुजूर, मुहलत लेनी होगी ।”

“मुहलत लेनी होगी, अदालत तुम्हारे बाप की है, नालायक !” फिर जूनियर से कहा—“इसकी मिस्ल निकालो ।”

जूनियर ने मिस्ल निकाली । पिछली तारीख की कार्यवाही पढ़ सुनाई । ठाकुर बोले “दरखास्त लिखो ।”

ठाकुर ने दरखास्त लिखाई, लिखने पर सुनी । सुनकर टाइप करने को कह दिया । टाइप होने पर कहा—“एक रुपया टाइपिस्ट को दो, दो रुपए टिकट के लिए । दो रुपए जूनियर को ।”

मुवकिल ने पाँच रुपए निकालकर जैसा कहा गया रुपये बाँट दिए । ठाकुर बोले—“रुपए दिए ।”

“जी हुजूर ।”

“चलो कचहरी में” छोटे वकील दरखास्त देंगे, आवाज पढ़ने पर ।

मुवकिल चले गए । ठाकुर बोले—“गए ?”

“जी हाँ ।”

“वे दो रुपए टिकट वाले कहाँ हैं ।”

“यह हैं” जूनियर ने रुपए ठाकुर के हाथ पर रख दिए ।

“टाइपिस्ट, इन दो रुपयों की जलेबियाँ ले आओ, देखना गर्म हों।”

“बहुत अच्छा” टाइपिस्ट चला गया।

जलेबियाँ आई, ठाकुर ने खाई, जूनियर ने खाई, टाइपिस्ट ने खाई।

जूनियर ने पूछा—“दरखास्त का क्या होगा?”

“कुछ नहीं होगा, मिस्टर रज दो। अशलत तो आज आयगी नहीं—कैसे होगा कहाँ?” जूनियर ने मिस्टर में दरखास्त रख दी। दो-तीन मुवकिल और आए।

ठाकुर ने पूछा—“कौन है?”

“गोपालप्रसाद हूँ हुजूर, कल पेशी थी शहादत का हुक्म हुआ है।”

“तो तलबाना दाखिल करो, खर्चा भरो, जूनियर, लिखो दरखास्त।” दरखास्त ठाकुर ने लिखाई, सुनी, टाइप की गई। “एक रुपया टाइपिस्ट को दो, तीन रुपए तलबाने के, गवाह कि...”

“चार हुजूर।”

“चार दूना आठ रुपए खुराकी के। हमारी फीस भी दो और जूनियर की भी दो।”

मुवकिल ने रुपए दिए, खर्चा और अपनी फीस के रुपए ठाकुर ने फिर बल से अपने बक्स में रखे फिर पूछा, “और कौन है?”

“गोविन्द पाडे हूँ, सरकार, गाँव में फौजदारी हो गई।”

“कै आदमी मरे?”

“मरा तो कोई नहीं।”

“फिर मुकदमा क्या होगा, किसी की टंग टूटी, दाँत टूटा, हड्डी टूटी?”

“नहीं सरकार, खफीफ-सी चोट आई है।”

“तो ठाकुर के पास क्या झुक मारने आया है, जा भाग, दाँत तोड़कर या टाँग तोड़कर आ। क्या औरतों की भी बे-इज्जती हुई है?”

“नहीं सरकार।”

ठाकुर गर्ज उठे। “नहीं कैसे बे?” बारदात दिन में हुई या रात को?

“दिन में आई-बाप।”

“अरे मर्दूद ! रात को हुई । १५-२० आदमी लाठियों-हथियारों से लैस होकर घर पर चढ़ आए ।”

“नहीं हजूर ।”

“नहीं के बच्चे भाग यहाँ से ।” ठाकुर ने लाठी सँभाली । जनियर ने इशारा किया ।

गोविन्द पाण्डे ने कहा—“हाँ हजूर, ऐसा ही हुआ ।”

“घर में आग लगाने की भी उन्होंने कोशिश की ?”

“हाँ हजूर ।” गोविन्द पाण्डे ने ठाकुर की लाठी की ओर देखकर कहा ।

“जनियर, इस्तगासा लिखो जेर दफ्ता.....मार-पीट, ट्रसपास, लूट, एटेम्प्ट आफ मर्डर ।”

इस्तगासा लिखा गया । ठाकुर ने सुना । सुनकर खूब हँसे । हँसकर कहा—
“गवाह मिलेंगे ?”

“जी हजूर, मिलेंगे ।”

“ठीक है, सबको बन्द करवा दूँगा, छोड़ूँगा एक को भी नहीं । टाइपिस्ट ! टाइप करो ।”

इस्तगासा टाइप हुआ ।

“बारह आना टिकट, २ रुपया अहलमद, २ रुपये फुटकर खर्चा, २ रुपये टाइपिस्ट, पन्द्रह जनियर की और पचास हमारी फीस । दाखिल करो ।”

“हुजूर, सिर्फ पच्चीस ही रुपया है ।”

“इतना संगीन मुकद्दमा और पच्चीस रुपया घर से लेकर चला । खबीस कहीं का । अभी वही दो । बाकी पेशी पर देना ।” गोविन्द पाण्डे ने रुपया ठाकुर के सामने रखा । ठाकुर ने दो रुपये टाइपिस्ट और पांच जनियर को देकर शेष यत्न से अपने बक्स में रखा । मुक्किल से कहा—“जाओ घर, कल आकर बयान देना । दो सरसरी गवाह भी लाना ।”

“बहुत अच्छा हुजूर ।” पाण्डे चला गया ।

ठाकुर की चैम्बर प्रैक्टिस चल रही थी । हरदास बजाज सलाम करके बैठ गया ।

ठाकुर ने पूछा—“कौन है ?”

“हरदास, ठाकुर साहब, कपड़े के रुपये को बहुत दिन हो गए, रुपये अब मिल जाते तो अच्छा था ।”

“ठाकुर ने हुँकारा भरा । पछा, कुल कितना रुपया है, याद है ?”

“बासठ रुपये बारह आना है हुजूर ।”

ठाकुर ने फिर बक्स में चाबी घुमाई । दस रुपये का एक नोट निकाल कर कहा—“यह लो । अभी अपना इतने से ही काम चलाओ ।”

नोट लेकर हरदास ने कहा—“हुजूर, नोट कर लीजिये, कभी भूल-चूक हो जाय !”

ठाकुर ने बिगड़कर कहा—“जा, जा, हो गया नोट, हमारी मर्जी है दे दिया । मर्जी न होगी तो तू क्या लेगा हमसे ?”

हरदास चुपचाप सलाम करके चला गया । घासी दूध वाले ने आकर सलाम किया ।

ठाकुर ने पूछा—“कौन है ?”

“घासी हूँ सरकार, कुछ मिल जाता तो अच्छा था । भैंस भूखी खड़ी है । इस महीने कुछ भी नहीं मिला ।”

“तो दूध में पानी कितना मिलाया था बदमाश ?”

“नहीं सरकार, आपको एकदम खालिस दूध दिया था माई-बाप ।”

ठाकुर का हाथ फिर जनेऊ पर पहुँचा और बक्स की सारी जमा पूँजी दूध वाले के हाथ में ।

थोड़ी देर ठाकुर चुपचाप बैटे रहे । फिर बोले—“गया ?”

“जी ।”

“टाइपिस्ट ?”

“जी ।”

“आज तुम्हें कितना मिला ?”

“साढ़े चार, हुजूर ।”

“तो अभी तो बारह भी नहीं बजे, और भी मुक्किल आयेंगे ।”

“जी हाँ, हुजूर ।”

“जाओ फिर इसमें से एक रुपये की कचौड़ियाँ ले आओ । मगर गर्मा-गर्म हों ।”

“बहुत अच्छा ।”

टाइपिस्ट उठकर जाने लगा । इसी समय बालक का हाथ पकड़े राज खपरैल के सामने आ खड़ी हुई । बालक ने सहमते हुए कहा—“वह बाबू बैठे हैं ।”

राज दो कदम आगे बढ़ी । ठाकुर ने पूछा—“कौन है ?”

“एक औरत है हजूर ।”

“क्या औरत ?” बिगड़कर ठाकुर ने लाठी उठाई । दूर हो, दूर हो, ठाकुर ने गर्जकर कहा ।

पर राज स्थिर खड़ी रही । ठाकुर ने दोनों हाथों में लाठी उठाकर कहा—

“गई या नहीं ?”

जूनियर ने धीरे से कहा —“माँ जी, पीछे हट जाइए । ठाकुर साहब का मिजाज काबू में नहीं रहता है, हाथ चला बैठते हैं ।” परन्तु राज ने सुना नहीं । वह और आगे बढ़कर दालान के भीतर आ गई । ठाकुर ने फिर गर्जकर कहा—“गई ?” लाठी का हाथ ऊपर उठा ।

“मैं आ गई हूँ राज ।” राज ने कोमल कण्ठ से कहा ।

“ऐं, राज ! क्या-क्या ? ठाकुर का सर्वाङ्ग काँप गया । ऊपर उठा हुआ हाथ नीचे को झुक गया । लाठी हाथ से छूट गई । वे हाँफते-हाँफते चौंकी पर बैठ गए । वे होठों-होठों में न जाने क्या बड़बड़ाने लगे । राज ने उसी भाँति शान्त स्वर में कहा —“मैं ऊपर जाती हूँ, चाभी भिजवा दीजिये ।”

“बालक का हाथ पकड़कर राज उन टूटी-फूटी सीढ़ियों की ओर अग्रसर हुई, ठाकुर का सर्वाङ्ग पीपल के पत्ते की भाँति कांपने लगा, जूनियर और टाइपिस्ट ने बालक को पहचान लिया—पर राज को उन्होंने नहीं पहचाना । पर ठाकुर ने जब काँपते हाथों से चाभी का गुच्छा जेजे से खोलकर जमीन में गिरा दिया तो उनका अभिप्राय समझकर टाइपिस्ट ने उसे उठा लिया । वह ऊपर

जाकर चाभी राज को दे आया ।

ऊपर तीन कमरे थे, तीनों के दरवाजों में किवाड़ नहीं थे । एक किनारे वाला रसोई के काम आता था—उसमें दो-चार न जाने कितने दिन के जूठे गन्दे बर्तन बिखरे पड़े थे, शायद बालक की माता के चले जाने के पहले के । दूसरे कमरे में एक चारपाई पर ठाकुर का बिस्तर था, बिस्तर बहुत गंदा था, बहुत दिन से उसे झाड़ा नहीं गया था । तीसरा कमरा एकदम खाली था । उसमें कोई सामान भी न था ।

सामने खूब खुली बड़ी छत थी, छत की नीचे की शायद दो धरन टूट गई थीं, वह बीच में नीचे झुक गई थीं । उसकी दशा बड़ी खतरनाक थी । कमरों में और छत पर मनो कूड़ा-करकट जम था, बरसों से झाड़ू नहीं लगी थी । राज चुपचाप आकर खाली कमरे के बीचोंबीच पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ी हो गई, पति और पति के घर को इस रूप में देखने की उसने कल्पना भी नहीं की थी ।

ठाकुर ने मन्द स्वर से कहा—“टाइपिस्ट, कहाँ गई वह ?”

“हुजूर, मलकाइन ऊपर गई ।”

बालक की माता को सब लोग मलकाइन कहते थे । टाइपिस्ट ने राज को बालक के साथ देखकर अनुमान से उसे मलकाइन कहा ।

ठाकुर ने लाठी ज़रांन पर पटककर कहा—“धत्, मलकाइन नहीं रे ठकुरानी ।” ठकुरानी की बहुत गुण-गरिबा सब लोग सुन चुके थे । वह किसी-न-किसी रूप में सबकी चर्चा का विषय बन चुकी थी । वही दुबली, पतली रोगिणी-सी निराभरण, बूढ़ी-सी औरत ठकुरानी है, यह सुनकर जूनियर और टाइपिस्ट ठाकुर का मुँह ताकने लगे । ठाकुर की अग्नी आँखें अंधकारपूर्ण विश्व में जैसे घूम-घूमकर कुछ खोज रही थी । उन्होंने एकाएक पूछा—“ठकुरानी, अकेली है क्या ?”

“जी नहीं, राजा बाबू साथ हैं ।”

“राजा बाबू ?” ठाकुर ने दो-तीन बार लाठी जमीन पर पटकी ।

फिर उन्होंने जल्दी से बक्स के भीतर दोनों हाथ डालकर सारा बक्स ढटोल

डाला—व्याकुलता और दीनता से उनका चेहरा भर गया । उनकी उंगलियाँ काँपने लगीं । बक्स में एक पैसा—एक पाई भी न थी । उन्होंने भरीए स्वर में कहा—“टाइपिस्ट ।”

“जी हुजूर” टाइपिस्ट ने ठाकुर की ऐसी दीन वाणी कभी सुनी भी न थी ।

“कचौरी लाए ।”

“अभी नहीं हुजूर ।”

“कचौरी लाने की ज़रूरत नहीं है, वह रुपया हमें दो ।”

टाइपिस्ट की आँखों में आँसू भर आए । उसकी जेब में जितने रुपये थे, पाँच छः सब उसने ठाकुर के हाथ में चुपचाप रख दिए । ठाकुर ने कहा—“यह क्या, यह क्या ?”

“सब रख लीजिये सरकार, थोड़े ही हैं ।”

ठाकुर ने गिनकर संतोष की साँस ली । गिनकर कहा—“सात हैं कि छः देखो तो ।”

“सात हैं सरकार !”

“तो यह ऊपर ठकुरानी को दे आओ ।” रुपये उन्होंने टाइपिस्ट के हाथ में थमा दिए । टाइपिस्ट को संकेत से रोककर जूनीयर ने भी अपनी जेब में से सारी जमा-पँजी चुपके से निकालकर उसके हाथ पर रख दी । संकेत ही से कहा—“इन्हें भी ले जाओ ।” परन्तु ठाकुर को मालूम न हो ।

ठाकुर शंका में अभिभूत हुए जड़वत् बैठे रहे । वे होठों ही में अस्त-व्यस्त बड़बड़ाने, और कभी हँसने, कभी लाठी खटकटाने लगे । कभी वे अपने बक्स में दोनों हाथ डालकर टटोलने लगे ।

टाइपिस्ट ने राज को प्रणाम करके वे सब रुपये उन्हें दे दिए । रुपये लेकर राज ने पूछा—“तुम कौन हो भैया ?”

“मैं टाइपिस्ट हूँ माँ जी !”

“क्या ठाकुर के पास ही रहते हो ?”

“नहीं, पास ही घर है, पर रोजी ठाकुर साहब की कृपा से ही चलती है ।”

“कितना मिल जाता है तुम्हें ?”

“यही, कभी पाँच-सात रुपया, कभी कुछ कम, कभी अधिक भी ।”

“और कौन है ठाकुर के पास ?”

“जूनियर हैं माँ जी, दो-तीन हैं ।”

“उन्हें कितना मिल जाता है ?”

“कभी दस-बीस, कभी कुछ नहीं ।”

“और ठाकुर को ?”

“कुछ ठीक नहीं, कभी दस-बीस, कभी सौ-पचास, कभी कुछ नहीं ।”

“सब रुपया क्या होता है यह ?”

“सब खर्च हो जाता है, माँ जी ।”

“कैसे ?”

“कुछ चाय-पानी में, फिर किसी के लड़कों की फीस भरनी होती है, किसी की लड़की की शादी करनी पड़ती है । किसी का कर्जा चुकता होता है । किसी के डॉक्टर का बिल ठाकुर चुकाते हैं । पहले जब माँ जी थी, शाम को जो बचता था, माँ जी के पास भेज देते थे । माँ जी उसी से घर-गृहस्थी चलाती थीं ।”

“ये सब लोग क्या ठाकुर के बुलाने से आते हैं-?”

“नहीं, माँ जी, ठाकुर साहब की दानशीलता सभी जानते हैं । जिसकी गज पड़ती है, आता है । आकर कोई खाली लौटता नहीं ।”

हाथ के रुपयों को गिनकर राज ने कहा—“इस्कीस रुपये हैं । यह क्या आज की ठाकुर की कमाई है ?”

टाइपिस्ट संकोच में पड़ गया । उसने नीची नजर करके कहा—“नहीं माँ जी, आज जो कमाई हुई थी, वह तो खर्च हो गई ।”

“और यह रुपए ।”

“कुछ मेरी, कुछ जूनियर की कमाई के थे—सब जोड़-जाड़कर ले आया हूँ ।”

“क्या ठाकुर ने माँगे थे ?”

“माँ जी, उन्हीं का दिया तो यह सब है, जब नहीं रहते तो माँग लेते हैं,

खिलाते-पिलाते भी तो हैं ।”

कुछ देर राज सोचती रही । उसने कहा—“अच्छा भैया, तुम जरा एक मजदूर बुला दो, और वहाँ कुछ काम नहीं तो थोड़ी देर मेरे पास ही रहो ।”

“अच्छा माँ जी, मैं भी आता हूँ ।”

×

×

×

ठाकुर ने हाथ मी मुड़ी में लाठी खूब कसकर पकड़कर शक्ति स्वर से पूछा—“रुपए ठकुरानी ने लिए ?”

“जी हाँ ।”

ठाकुर पुनर्कित हो गए । वे बारम्बार लाठी से जमीन ठोकने लगे । उनकी दृष्टि से यह अनहोनी बात थी । उन्होंने टाइपिस्ट से कहा—“जाओ तुम, ठकुरानी को शायद कुछ जरूरत हो, पूछ आओ ।”

“जाता हूँ हुआ, उन्होंने मुझे बुलाया है ।”

ठाकुर ने दोनों हाथों से अंक में अपने खाली बक्स को भर लिया । उनकी अंधी आँखों के अंधेरे विश्व में शायद प्रकाश की एक रेखा फूट निकली ।

२५

राज ने अपने पति की ध्वस्त गृहस्थी को उसी छोटी सी रकम से सम्पन्न किया । उसके पास कुछ और भी रुपये थे, साथ थे—पर वे उसने खर्च नहीं किये, रुमाल में बाँधकर ताल में रख दिए । खाली कोठरी के एक कोने में जमीन पर उसने अपना बिछौना लगाया और उस पर बालक को बैठा दिया । फिर ठाकुर की चारपाई को अच्छी तरह कस-कसाकर उस पर ठाकुर का नर्म बिस्तरा लगा, उस पर अपने हाथ से साफ की हुई चादर बिछा दी । यह सब कुछ करते-धरते शाम हो गई, शाम के समय उसने फिर टाइपिस्ट को बुलाया, और पूछा—“इस वक्त ठाकुर भोजन कितनी देर में करते हैं ?”

“जब से माँ जी गई हैं, इस वक्त का ठाकुर का भोजन नहीं होता, दोपहर

को ही बाजार से मँगाकर कुछ खा लेते थे । कभी-कभी एक महारा आकर कुछ बना जाती है ।”

“इस वक्त ठाकुर पीते-पीते तो नहीं ।”

टाइपिस्ट का सिर झुक गया । उसने धीरे से कहा—“पीते तो हैं माँ जी ।”

“तो आज पीने से रोक देना ।”

“रोकने से वे मानेंगे नहीं, हाथ चला बैठेंगे ।”

“मेरा नाम लेकर कहना—मना किया है ।”

“कहने पर भी मानेंगे नहीं, पहले वाली माँ जी की भी नहीं मानते थे ।”

“तो मुझे खबर देना, मैं नीचे आऊँगी ।”

“वे हाथ चला बैठेंगे माँ जी, उन माँजी को भी बहुत मारा है ।”

“कुछ परवाह नहीं, तुम कहना । न मानें तो मुझे खबर देना ।”

“अच्छा ।” टाइपिस्ट चला गया । राज ने रसोई में हाथ लगाया । घर में प्रकाश किया ।

ठाकुर ने पुकारकर टाइपिस्ट से कहा—“टाइपिस्ट !”

“जी ।”

“देखो, बोतल में कुछ बची है या खाली हो गई ।”

“अभी आधी बोतल है, सरकार !”

ठाकुर की बाँछें खिल गईं । खूब जार स हसकर उन्होंने कहा—“ताला दे ।”

टाइपिस्ट चुपचाप बैठा रहा ।

ठाकुर ने गरजकर कहा—“टाइपिस्ट !”

“जी हुजूर ।”

“देता क्यों नहीं ।”

“हुजूर...”

“अधे हुजूर के बच्चे”, ठाकुर ने दोनों हाथों में लाठी उठाई ।

टाइपिस्ट ने कहा—“लाता हूँ सरकार ।”

“ला जल्दी !”

टाइपिस्ट ने शराब की बोतल निकालकर गिलास भरा, पानी भी मिलाया और गिलास ठाकुर के हाथ में देते हुए काँपते स्वर में कहा—“हुजूर माँ जी ने . . .”
ठाकुर चौंक पड़े। गिलास हाथ में लेकर पूछा—“माँ जी ने क्या ?”
“माँ जी ने मना किया है।”

ठाकुर का गिलास होठ तक जाकर भी होठ को न छू सका। उन्होंने अपनी अंधी आँखों को टाइपिस्ट के मुँह पर जमाकर मन्द स्वर से पूछा—“ऐं, मना किया है ?”

“हाँ, हुजूर कहा है ठाकुर न मानें तो मुझे खबर देना, मैं नीचे आ जाऊँगी।”

“ठकुरानी नीचे आयेंगी ?”

“सरकार आज मत पीजिए !”

ठाकुर का हाथ नीचा हो गया। उन्होंने कहा—“ले इस गिलास को फेंक दे और उस बोतल को भी।”

टाइपिस्ट ने हर्षोल्लस होकर दोनों चीज नाली में फेंक दीं। ठाकुर के अंधे नेत्र चमकने लगे। उनके हाथों पर अन्तरात्मा के आनन्द की मुस्कान फैल गई बहुत-सी बातें उनके मस्तिष्क में घूम गईं। उन्होंने पुकारकर कहा—“टाइपिस्ट !”

“जी हजूर !”

“क्या तुने बताया था ?”

“सरकार उन्होंने पूछा था, मैं झूठ न बोल सका।”

ठाकुर हँसने लगे। बोले—“जा कह दे, ठकुरानी के हुक्म की तामील हो गई।”

टाइपिस्ट ने ऊपर जाकर राज को सूचना दे दी। राज की आँखों में आँसू भर आए, और उसके होठ काँपने लगे। कुछ ठहरकर उसने कहा—“ठाकुर सोने कब आते हैं ?”

“इसका क्या ठिकाना ? कभी आधी रात में आते हैं, कभी नीचे के तख्त

पर पड़े रहते हैं, उन्हें होश तो रहता नहीं ।

“तो जाओ भैया, ठाकुर को ऊपर ले आओ ।”

टाइपिस्ट चला गया ।

ठाकुर जैसे इस आवाहन की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, “चलो” कहकर वे उठ खड़े हुए । उनका अंग काँप रहा था, अन्धी आँखों में तूफान मचा हुआ था, वे टाइपिस्ट के कंधों का सहारा लेकर लाठी टेकते हुए धीरे-धीरे टूटी-फूटी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जा पहुँचे ।

राज जीने के द्वार पर खड़ी थी । उसने एक कदम आगे बढ़कर ठाकुर का हाथ पकड़ लिया, उस कोमल शीतल हाथ के स्पर्श को पाकर ठाकुर के शरीर में हलचल मच गई, टाइपिस्ट खड़ा देखता रहा । दूसरे हाथ से राज ने ठाकुर की लाठी उनके हाथ से लेकर एक कोने में रख दी, और अब वह उनका एक हाथ थाम और दूसरे से कंधे पर सहारा देकर उन्हें उनके शयनागार में ले गई । ले जाकर उनकी चारपाई पर बैठा दिया । लौटकर टाइपिस्ट को घर जाने की छुट्टी दी । घर की कुण्डी भीतर से बन्द की । फिर थोड़ा गर्म पानी और एक थाल लेकर वह ठाकुर के पास गई । थाल में ठाकुर के दोनों पैर रखकर उसने उन्हें गर्म जल और साबुन से भली-भाँति धोया, फिर आँचल के छोर से पोंछकर हाथ-मुँह धुला और कुल्ला कराकर उन्हें तर्किए के सहारे बैठा दिया बालक की भाँति ठाकुर चुपचाप बैठ गए । एक अनिर्वचनीय सुख से अभिभूत होकर वे आनन्दाश्रु बहाना भी जैसे भूल गए । उनकी वाणी मूक-जड़ हो गई । राज ने तिपाई पर भोजन का थाल रखकर कोमल स्वर में कहा — “भोजन करो ।”

वह कण्ठ-स्वर ही कुछ दूसरा था । ठाकुर ने राज का कण्ठ-स्वर सुना था, सवाल-जवाब किये थे, बातचीत बहस की थी । पर यह कोमल स्निग्ध-प्रेम में सराबोर छोटा सा वाक्य सीधा ठाकुर के प्राणों को छू गया । उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला । ठाकुर भोजन करने लगे । बहुत दिन बाद स्वादिष्ट और ताजा भोजन उन्हें मिला था । और, यह केवल स्वादिष्ट भोजन ही न था अंधे ठाकुर को इसके साथ राज का सब प्राप्तव्य प्राप्त हो रहा था । जब तक ठाकुर भोजन करते रहे, राज चुपचाप उनके निकट बैठी रही । बातचीत नहीं

हुई। जिस वस्तु की कमी देखी, राज ने थाली में रख दी। तृप्त होकर ठाकुर ने कहा - “बस।”

राज ने जूटी थाली ले जाते दृष्ट कहा—“सो मत जाना. मैं दध गर्म करके अभी लाती हूँ।”

ठाकुर ने जवाब में कुछ नहीं कहा। वे पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रहे।

दूध पिलाकर राज ने यत्नपूर्वक ठाकुर को सुला दिया। इसके बाद रसोई में जाकर स्वयं थोड़ा आहार किया। वह काफी थक गई थी। उसका दुबला-पतला तपःकृश शरीर इतने परिश्रम के भार को सहने के योग्य न था, फिर भी वह शान्त-तृप्त और आनन्द-विभोर थी। शयन करने जब वह अपने बिछौने पर गई तो देखा—गोपाल उसके बिछौने पर गहरी नींद सो रहा है। बड़ी देर तक वह उस बालक की सुन्दर कोमल मोहिनी मूर्ति को देखती रही। फिर उसे हृदय से लगाकर वह सो गई। बहुत देर तक वह अपने जीवन को अथ से इति तक विचार गई। ठाकुर की उस तेज और दर्प की मूर्ति से वह उनकी आज की तेज और दर्प की मूर्ति की तुलना करने लगी। उसने देखा ठाकुर में वैसा ही तेज आज भी है। उनकी इस हीनावस्था ने असहाय होने पर भी उसमें कुछ कर्मा नहीं होने दी है। चलचित्र की भाँति उसके मानस-नेत्रों के आगे नये-पुराने जीवन-चित्र आए। उसकी आँखें गीली भी हुई और आँसू भी उसने बहाए और वह इसी विचार-सागर में गोते खाती सो गई।

एकाएक उसकी नींद टूट गई। उसने सुना ठाकुर जोर-जोर से उसका नाम लेकर पुकार रहे हैं। कोठरी से बाहर आकर देखा—ठाकुर खुली छत पर लाठी हाथ में लिये हाथी के समान भारी-भारी पैरों से जीर्ण छत को कम्पायमान करते हुए—‘राज-राज’ चिल्ला रहे हैं। वे तारों भरी रात में अनन्त आकाश की ओर उन्मुख होकर पुकार रहे हैं—‘राज-राज।’ गाम्भीर्य जैसे वन से लौटती हुई आतुर आकुल स्वर में अपने बच्चे के लिए रम्भाती है उसी प्रकार ठाकुर की उस पुकार में एक आहत आत्मा का आर्तनाद था, वेदना की एक सिसक थी। भूख की एक तड़प थी। उनके कण्ठ से जो ‘राज’ शब्द निकलता था उसके साथ ही, उनके जीवन-भर के मार्ग ही अभाव की जैसे तड़प छटपटा उठती थी। जैसे युग-

युग की प्यास से तड़पती हुई आत्मा छूटपटा रही हो। वह घोष उनके मुँह से निकला हुआ केवल कण्ठ स्वर न था—उनके सूने हृदय का आवाहन था।

राज ने अपने कर्पिते हुए हाथों में ठाकुर का हाथ पकड़कर कहा—“यह क्या ?”

ठाकुर ने फिर उसी भाँति आकाश की ओर मुँह करके आर्त स्वर से पुकारा—“राज, राज !”

राज ने कोमल स्वर में कहा—“नै तो यहाँ हूँ तुम्हारे पास ही।”

“तुम, ठकुरानी ?”

“ठकुरानी नहीं, राज।”

“राज ?” ठाकुर की वाणी कम्पित हो गई।

“हा, राज तुम्हारी राज।”

“मेरी राज ?” जैसे ज्वाला मुखी फूट निकला हो। ठाकुर के सम्पूर्ण प्राण चीख उठे, उनके हाथ की लाठी छूट गई। उन्होंने दोनों हाथ पसार दिए—“राज, राज, तुम यहाँ हो, तुम आई हो ?” धीरे से राज ने निकट आकर ठाकुर के वक्ष से अपना सिर लगा दिया। ठाकुर ने राज को अक में भरकर पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगे। उनका प्रत्येक रोम आनन्द-सागर में मग्न हो गया था। उनका सब ज्ञान लुप्त हो गया था, उनकी वाणी जड़ हो गई थी। केवल श्वास वेग से चल रहा था।

“चलो सो रहो।” राज ने धीरे से कहा। वह बालक की भाँति ठाकुर का हाथ पकड़कर उनके बिछौने पर ले गई। बिस्तर पर लिटाकर राज उनके सिरहाने बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरने लगी। उस कोमल स्निग्ध, शान्त, प्रिय हाथ का स्पर्श पाकर ठाकुर ने जैसे फिर से नवीन जन्म धारण किया। ठाकुर ने दोनों हाथों में राज का हाथ थामकर कहा—“तो तुम राज हो ?”

“हाँ।”

“मेरी राज ?”

तुम्हारी ही।” राज की आँखें डबडबा आईं।

मेरी राज ?” ठाकुर अत्यन्त असंयत हो गए।

“हां, हाँ।” उसने अत्यन्त स्निग्ध स्वर में कहा।

“वह ठकुरानी तो नहीं, तेज और दर्प की मूर्ति, कर्तव्य की कठोर प्रतिमा?”

“मैं तुम्हारी राज हूँ।”

“और मैं?”

“तुम मेरे राजा हो।”

“क्या कहा—जोर से कहो, कान भी तो बूढ़े हो गए।”

“मेरे राजा।”

“फिर कहो।”

“मेरे राजा।”

“फिर कहो।”

राज ठाकुर के वक्ष पर गिरकर सिसकने लगी। युग-युग के पाप-ताप अमर्ष संघर्ष धुल गए। प्रेम की मन्दाकिनी कल-कल बहने लगी।

ठाकुर ने राज के सिर पर हाथ रखकर कहा—

“मेरी राज अब मुझे छोड़कर तो न जायगी?”

“न।”

“आज मेरी अंधी आँखें धन्य हो रही हैं राज।”

“कैसे?”

“उन्हें दिव्य दृष्टि मिल गई है, वे तुम्हारी उसी मूर्ति को देख रही हैं, जब तुम भरे-यौवन में अपना सब-कुछ विसर्जन करके मेरे दम्भ का चुपचाप शिकार बनकर आई थीं। ओह कैसा तुम्हारा रूप था—उसने मेरे रक्त की एक-एक बूँद को उन्मत्त बना दिया था।”

“तब भी तुमने प्यार किया था।”

“प्यार था कि वासना, कैसे कहूँ। परन्तु मैं वर्षों सोया नहीं, केवल तुम्हारा ही ध्यान करता रहा।”

“फिर आए क्यों नहीं।”

“दम्भ ने कितना मुझे पराभूत किया। पर अब तो जीवन ही समाप्त हो गया। अच्छा हुआ आँखें जाती रहीं, केवल सात लाख रुपया ही नहीं, आँखें

भी देकर तुम्हें आज पाया ।”

“आखें ही देकर क्यों, जीवन देकर क्यों नहीं कहते ।” राज ने ठाकुर के सिर पर कोमल हाथ फेरते हुए कहा ।

“लेकिन घाटे में तो रहा नहीं, पुराना जीवन देकर नया पाया ।”

कुछ देर चुप रहकर राज ने कहा—“परन्तु अपराध मेरा भी न था ।”

“ओह, तुम्हारे विद्रोह का जब-जब मैंने बखान सुना—आनन्द से नाच उठा । जीवन-भर मेरा तुम्हारा आत्म-सम्मान युद्ध करता रहा, क्या बुरा हुआ । जीवन गया, आखें गईं, पर जीता तो मैं ही, मैंने तुम्हें पा लिया ।”

“स्वीकार करती हूँ, तुम जीत गए प्रिय, मैं हारकर ही तो तुम्हारे पास आई हूँ ।”

“इस जीते हुए ठाकुर को हराने, अरी ठकुरानी, अब दाव-घात न चलाना—अंधा हूँ तो क्या, लड़ने को अब भी मुस्तैद हूँ ।”

ठाकुर ने खूब कसकर राज का हाथ पकड़ लिया । राज बोली नहीं । चुपचाप ठाकुर के सिर पर अपना वरद कोमल हाथ फेरती रही । बहुत देर तक, बहुत देर तक ।

२६

धीरे-धीरे फाटक पार करके, कंकरीट की सड़क पर हल्के-फुल्के चरण रखती हुई राज उस भव्य भवन की सीढ़ियों के निकट जा खड़ी हुई । कोमल कान्त एक तरुण भूलेदार कुर्सी पर बैठा भूलता हुआ किसी अंग्रेजी पत्रिका के पन्ने उलट रहा था । एक सिल्क का बनियान और महीन धोती उसके अंग पर थी । सोने के समान उसका अंग था । कमल के समान आखें । राज की दृष्टि कुछ मन्द पड़ गई थी, उसने आँखों की धुन्ध पोंछकर तरुण को देखा । वह ठकटकी बाँधकर उसे देखने लगी । अब से अठ्ठाईस वर्ष पूर्व का ब्रज क्यों-का-त्यों वहाँ उपस्थित था । वही आँखें, वही होठ, वही शरीर, वही २४ वर्ष की आयु । आश्चर्य और भावावेश में अभिभूत हो राज दो सीढ़ी चढ़ गई । आप-ही-आप उसके होठों से निकला ‘ब्रज’ । युवक कुर्सी से उठ खड़ा हुआ । सफेद सादा

सादी में लिपटी हुई एक दुबली-पतली वृद्धा स्त्री को देखकर उसने पूछा—
“तुम क्या चाहती हो?”

“मैं मैं तुम्हें, तुम-तुम कौन हो भैया, तुम्हारा नाम क्या है?”

“मेरा नाम ‘राज’ है।”

“राज?”

“हाँ।”

राज ने एकदम आगे बढ़कर तरुण को अंक में भर लिया। वह चुपचाप उसके अंग पर हाथ फेरती रही। उसके नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा वह चली। तरुण ने धवराकर कहा—“तुम—आप शायद ममी से मिलना चाहती हैं, मैं बुलाता हूँ।” उसने पुकारा—“शील, शील।”

एक सत्रह वर्ष की कुमुम-सुषमा धारिणी बालिका—‘क्या भैया’ कहती बहर आई। एक अपरिचिता स्त्री को भाई के सिर पर हाथ फेरते देखकर वह वहीं ठिठक गई।

राज ने पूछा—“यह शील है, यही नाम लिया न तुमने।”

“हाँ।”

राज आगे बढ़कर शील की ठोड़ी पकड़कर एकटक उसे देखने लगी, पर आँसुओं ने उसकी दृष्टि हर ली। वह बारंवार अपनी आँखें पोंछने लगी।

इसी समय एक मोटर पोर्च में आकर लगी। मोटर से एक सम्भ्रन्त दम्पति उतरकर सीढ़ी पर चढ़ने लगे। भद्र पुरुष की अवस्था पचास को पार कर चुकी थी। महिला की चालीस के लगभग थी। भद्र पुरुष का शरीर भारी था, आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा था, पैर में पम्प-शू—अंग पर सिल्क का कुर्ता चाँदी से उज्ज्वल मस्तक पर उज्ज्वल चाँदी के तार-जैसे सफेद केश। महिला अब भी आकर्षक थी—उसका अंग-अंग सुषमा की खान बना हुआ था, शरीर जरा गदरा जाने से उस लावण्य में एक गाम्भीर्य का मिश्रण हो गया था।

एक दुबली-पतली स्त्री दबने के पास खड़ी है, यह दोनों ने देखा। एका-एक चीत्कार करके महिला दौड़कर राज के चरणों में लोट गई। राज ने आँसू

बहाते हुए कहा—“राधा-मेरी राधा बहन !”

और इसी समय भद्रपुरुष ने पृथ्वी पर बैठकर राज के दोनों चरणों में अपना मस्तक टेक दिया । गुणगरिमामय माता-पिता को इस साधारण स्त्री के चरणों में लोटते हुए देखकर बच्चे आश्चर्य की मुद्रा में सहम गए ।

ब्रज ने कहा—“अन्त में आपने हमें दर्शन दिये । इस सौभाग्य की हम कल्पना भी भूल गए थे ।”

“क्यों भला ?” राज ने बड़े-बड़े पलक उठाकर ब्रज की ओर देखा । उन पलकों पर जैसे हिमालय का बोझ लदा था । ब्रज ने जवाब नहीं दिया । वह चुपचाप दूसरी ओर देखने लगा ।

राधा ने कहा—“भीतर चलो दीदी !” फिर अकस्मात् ही उसे बच्चों की याद आई ।

तरुण एकटक माँ की ओर देख रहा था—राधा ने कहा—“बेटा राज, बड़ी माँ के चरण छू, और शील तू भी ।” दोनों ने राज के चरण छुए । इसी समय एक ६ वर्ष की बालिका आँखें मलती हुई बाहर आई । राधा ने कहा - “यह कुमुद है ।” राज ने झपटकर उसे गोद में ले लिया । फिर उसने आँसू पोंछकर हँसते हुए कहा—“और भी कुछ है कि बस ?”

राधा ने लजाकर हसते हुए कहा—सुशील और है, शायद पढ़ने गया है ।

राधा राज को आगे करके भीतर चली । राज ने राज के कंधे का सहारा लेकर दूसरे हाथ से शीला का हाथ पकड़ लिया और भीतर बैठकखाने में प्रवेश किया ।

भीतर आकर वह बड़ी देर तक ‘राज’ को एकटक देखती रही । फिर उसने बार-बार उसके मुख पर हाथ फेरा, इसके बाद ब्रज की ओर घूमकर कहा—“हू बहू तुम हो, पहली बार जब मैंने देखा—तो ऐसा प्रतीत हुआ—तुम्ही हो, वही अब से तीस वर्ष पूर्व के जैसे ये तीस वर्ष सपने में बीते, और आज इसी समय आँख खुली हों, पर आज उसके होठ काँपकर रह गए । वह फिर एक बार राज की ओर देखकर हँस दी । ब्रज ने एक शब्द भी नहीं कहा । राधा ने राज

को एक सोफे पर बैठा दिया। राज के चरणों में राज बैठा, गोद में कुमुद और बंगले में शील। राज हँसने लगी। हँसते-हँसते उसने ब्रज की ओर देखकर कहा—“मेरा नाम क्यों चुराया” भैया का नाम मेरे नाम पर क्यों रखा ? उसने हँसती-रोती आँखों से तरुण को देखा। तरुण ने अपना सिर राज की गोद में रख दिया।

ब्रज ने जवाब नहीं दिया ? राज ने तरुण की टोड़ी छूकर कहा—“तुम्हारा नाम क्या है भैया ?”

“राज, राजचरणदास।”

कुछ देर राज चुपचाप बैठी रही, फिर उसने राधा की ओर देखकर कहा—“तुम्हारी कमाई जमा-पूँजी को देखकर मुझे कितना सुख हुआ है ! बहन, अब कैसे कूँ !” फिर उसने एक बार ब्रज की ओर देखा, ब्रजराज अब भी चुप थे। जैसे उनके मुँह पर किसी ने मुहर लगा दी हो।

राज ने एक गहरी साँस ली। फिर वह हँस-हँसकर बच्चों से बातें करने लगी। शील ने उन्हें अपनी पुस्तकें दिखाई, गाना सुनाया, कुमुद ने अपनी गुड़िया दिखाई। बड़ी अम्मा की गोद में जो उसने आसन जमाया सो फिर उसे त्यागा नहीं। उसने अपनी दूध के समान निर्मल आँखें राज के मुँह पर जमाकर और उनके गले में दोनों बाँहें डालकर कहा—“बड़ी अम्मा, अब तुम मेरे पास रहना, मैं तुम को बहुत बढ़िया कहानी सुनाऊँगी। पापा ने मुझे सिखाई है।”

राज ने बालिका का मुँह चूम लिया। जवाब में हँसकर केवल इतना कहा—“अच्छा।”

बालिका खुश होकर उल्लसती हुई चली गई। दूररे बच्चों को भी विदाकरके राज ने हँसकर ब्रज की ओर देखा—कुछ देर देखती रही। फिर उसने हँसते हँसते कहा—“ब्रज, मैंने अपने जीवन में बड़े-बड़े सौदे किए, लेकिन इतना मुनाफा किसी में नहीं हुआ।”

ब्रज ने एक बार आँखें ऊँची करके राज को देखा। और सिर झुका लिया किन्तु राधा ने कहा—“कितना।”

“जितना इस सौदे में हुआ ।”

“किस सौदे में, राधा ने जानते-अनजानते प्रश्न किया ।”

“इसी में बहन, राज ने राधा की ठोड़ी पकड़कर उसका मुँह ऊँचा किया, और उसके होठों पर मुस्कान फैल गई, परन्तु उससे प्रथम उसकी आँखें चौंधार पानी बरसाने लगीं, फिर उसने आँसू पोंछकर ब्रज की ओर देखकर कहा—“किन्तु ब्रज, देखती हूँ, तुम्हें अपनी सारी ही जमा-पूँजी इस सौदे में लगा देनी पड़ी । बाकी कुछ बचा नहीं ”

“मेरे पास जमा-पूँजी थी ही कहाँ, दीदी, सब उधार का ही तो था, वही खाता था ।”

“पर कमाई तो बहुत हुई, राज” हँस दी ।

“यह राधा की करामात है ।”

“मान गई, राधा !”

“आशीर्वाद दो दीदी !”

“आशीर्वाद देती हूँ, बहन, तुम्हारी कमाई फले-फूले ।”

राज उठ खड़ी हुई ।

राधा ने घबराकर कहा—“यह क्या दीदी, अभी से चल दी, कुछ खाओ-पियोगी नहीं ?”

“नहीं बहन, फिर कभी देखा जायगा, अब चलूँगी, ठाकुर घबरा रहे होंगे ।” और, राज चल दी । पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाए, उन्हीं कंकरीट की रौसों पर मृदु मन्द चरण रखती हुई, निश्शब्द, निश्शंक ।

कोई भी न बोला । राज चली गई । राधा खड़ी आँसू बहाती दूर तक उस जाती हुई को देखती रही, और ब्रज ने नंगी भूमि पर लोटकर जिस स्थान पर राज के चरण पड़े थे, उस पर अपना मस्तक रख दिया । वे बड़ी देर तक वहाँ वैसे ही पड़े रहे । निश्चेष्ट-नीरव-निस्पन्द ।

